खण्ड 4

उपाख्यानमालिका

(प्रोफेसर राधावल्लभ त्रिपाठी)

चतुर्थ खण्ड का परिचय

एम0ए. संस्कृत कार्यक्रम द्वितीय वर्ष के प्रथम पाठ्यक्रम MSK004 – आधुनिक संस्कृत साहित्य और सात्यिशास्त्र के अध्ययन में आपका स्वागत है। यह पाठ्यक्रम कुल पॉच खण्डों में विभाजित है। चौथे खण्ड में प्रोफेसर राधाबल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित उपाख्यानमालिका का अध्ययन किया जायेगा। इस खण्ड में कुल पॉच इकाइयॉ में विषय वर्णन प्रस्तुत किये गए हैं। इकाइयों के शीर्षक निम्नानुसार हैं–

1. इकाई 14. प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी और उपाख्यानमालिका
2. इकाई 15. प्रथम उपाख्यान
3. इकाई 16. द्वितीय उपाख्यान
4. इकाई 17. तृतीय उपाख्यान
5. इकाई 18. चतुर्थ उपाख्यान

उक्त इकाइयों में उपाख्यान मालिका से सम्बन्धित वर्णन प्रस्तुत किए गए हैं जिनका वर्णन करने के बाद आप किए गए अध्ययन से प्राप्त शिक्षाओं को बता सकेंगें तथा इनसे सम्बद्ध प्रश्नों का उत्तर भी दे सकेंगें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 14 प्रोफेसर राधावल्लभ त्रिपाठी और उपाख्यानमालिका

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी और उनका साहित्य

14.4 सारांश

14.5 शब्दावली

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

14.7 बोध प्रश्न

14.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के आध्ययन से आप

- आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के जीवनवृत्त से परिचित हो सकेंगे
- उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय पा सकेंगे
- आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की कृतियों का वैशिष्ट्य जान सकेंगे
- आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा से परिचित हो सकेंगे
- उनके द्वारा रचित उपाख्यानमालिका का विशेष परिचय पा सकेंगे

14.2 प्रस्तावना

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में परिगणित होती है। यह जितनी पुरानी है, इसका साहित्य उतनी ही नवीनता लिये हुये है। विश्व का प्राचीनतम साहित्य वेदों के रूप में इसी भाषा में प्राप्त होता है। रामायण, महाभारत, अनेक पुराण, विविध दर्शन,महाकाव्य आदि सब संस्कृत में निबद्ध है। इस भाषा में आज भी उत्कृष्ट साहित्य रचा जा रहा है। आधुनिक कवि आज की परिस्थितियों को संस्कृत भाषा में सहजता और सरलता से उतारता है। आपने इस युग के अनेक संस्कृत महाकवियों को देखा होगा, उनके साहित्य का अध्ययन किया होगा तथा अनेक कवियों से आपका गाढ परिचय भी होगा। राधावल्लभ त्रिपाठी आधुनिक संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। प्रस्तुत इकाई में आप उनका तथा उनके साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे।

14.3 अचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म

राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म 15 फरवरी सन् 1949 (फाल्गुन कृष्ण पक्ष तृतीया, संवत् 2005 विक्रमी) को मध्यप्रदेश के राजगढ़ जिले में पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी तथा

श्रीमती गोकुल बाई के द्वितीय पुत्र के रूप में हुआ। इनके पितामह का नाम पं. राम प्रसाद त्रिपाठी था। पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान्, कवि तथा समीक्षक थे। पिता की साहित्यिक अभिरुचि की प्रबल छाप शिशु राधावल्लभ पर पड़ी। डॉ. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी मध्यप्रदेश शासन के उच्चतर शिक्षा विभाग में (प्राध्यापक, संस्कृत) के रूप में कार्यरत रहते हुए में शासकीय महाविद्यालय, छतरपुर से सेवानिवृत्त हुए।

शिशु राधावल्लभ की वय मात्र तीन वर्ष ही थी तभी माता का देहावसान हो गया। माता गोकुल बाई का असामयिक निधन तथा शासकीय सेवा में होने से पिता का बार–बार स्थानान्तरण शिशु राधावल्लभ के लिए कष्टकर थे। पिता के साथ रहते हुए भी बालक राधावल्लभ ने 6–7 साल की आयु से ही लेखन एवं अध्ययन को अपना अवलम्ब बनाया। उनकी यह साधना विकसित होकर आज विशाल कल्पवृक्ष के रूप में हमारे सामने है।

शिक्षा–

पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी ने ज्येष्ठ पुत्र हरिवल्लभ के साथ ही राधावल्लभ को भी विज्ञान एवं गणित आदि की शिक्षा की ओर अग्रसर किया। प्राथमिक शिक्षा के समय से ही राधावल्लभ अपनी प्रखर मेधा एवं अध्ययन प्रवणता के लिए विद्यालय एवं आस–पास के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गए थे। उन्होंने सन् 1965 में मध्यप्रदेश की माध्यमिकशिक्षा परीक्षा में विज्ञान विषय के साथ 8.2.70 प्रतिशत अंक अर्जित कर प्रदेश में प्रथम स्थान प्राप्त किया। विज्ञान एवं गणित में उनकी अप्रतिहत गति एवं अध्ययन के प्रति समर्पण को देखकर सभी लोग उनके वैज्ञानिक होने की कल्पना करते थे। पिता भी उन्हें इस ओर अग्रसर होते देख प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे किन्तु समुद्र की लहरें समुद्र की गोद में ही विश्राम लेती हैं, राजहंस अनन्त आकाश को नापकर ही शान्ति पाता है, चातक की प्यास समुद्र जल नहीं, स्वाती की बूँद ही मिटा पाती है। किशोर राधावल्लभ का मन विज्ञान एवं गणित विषयों के अध्ययन में नहीं रमा। भारतीय परम्परा की अनन्त एवं ममतामयी गोद के लिए आतुर उनका मन विज्ञान से विमुख हो कर संस्कृत अध्ययन के लिए उन्मुख हो उठा।

भारतीय विचार धारा विद्या को पूर्व जन्म का अर्जित आत्मस्थ कोश मानती है। राधावल्लभ त्रिपाठी इसके साक्षात् उदाहरण हैं। विज्ञान विषय का इतना उत्कृष्ट ज्ञान उन्हें कालान्तर में महान् चिकित्सक या अभियन्ता बना सकता था। उनके बड़े भाई श्री हरिवल्लभ त्रिपाठी विज्ञान का अध्ययन कर प्रसिद्ध अभियन्ता बने तथा अनुज श्री ओमप्रकाश त्रिपाठी विज्ञान विषय की पढ़ाई कर चिकित्सक के रूप में विख्यात हुए किन्तु राधावल्लभ को तब तक संस्कृत भाषा और उसके निहितार्थ का ज्ञान हो चुका था। उन्होंने बहुत छोटी उम्र में अभिज्ञानशाकुन्तल और कादम्बरी जैसे ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था तथा उनके रसपाक से पूर्णतरू परिचित हो चुके थे, अतरू स्नातक कक्षा में संस्कृत विषय लेकर महाराज महाविद्यालय, छतरपुर में अध्ययन प्रारम्भ किया और 1948 में विश्वविद्यालय की वरीयता सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया। तदनन्तर उच्चतर एवं उच्चतम शिक्षा की लालसा से राधावल्लभ सागर आ गये। उस समय मध्यप्रदेश में सागर विश्वविद्यालय उच्चशिक्षा का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। प्रो. रामजी उपाध्याय, डॉ. वनमाला भवालकर, डॉ. विश्वनाथ भट्टाचार्य जैसे तत्कालीन विद्वानों के कारण अध्ययन एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में संस्कृत विभाग, सागर विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा छात्रों के आकर्षण का केन्द्र थी। राधावल्लभ ने यहाँ एम् ए.

(संस्कृत) में प्रवेश लेकर अध्ययन प्रारम्भ किया और 1970 में 82 प्रतिशत अंक अर्जित कर कला संकाय में प्रथम रहे। उन्होंने सागर विश्वविद्यालय से ही योगविज्ञान में डिप्लोमा (1970), जर्मन भाषा में प्रमाणपत्रोपाधि (1971) तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से (1971) भाषाविज्ञान में प्रमाणपत्रोपाधि प्राप्त की।

गुरुपरम्परा

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की शिक्षा दीक्षा का मुख्य श्रेय उनके पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी को ही है। उन्होंने शैशवकाल में ही इन्हें अमरकोश, तर्कसंग्रह आदि में साथ सम्पूर्ण गीता और अयोध्या काण्ड तक रामचरित मानस कण्ठस्थ करा दिया था। विभिन्न विद्यालयों के कार्यक्रमों में इन ग्रन्थों का पाठ सुना कर बालक राधावल्लभ ने अध्यापकों एवं श्रोताओं को आश्चर्यचकित किया। बड़े होने पर भी इन्होंने बी.ए. तक की शिक्षा पिता के संरक्षण एवं मार्गदर्शन में ही प्राप्त की। इस प्रकार इनके प्रमुख गुरु पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी ही हैं। सागर आने पर डॉ. वनमाला भवालकर आदि अनेक विद्वानों से इन्होंने शिक्षा प्राप्त की और प्रो. राम जी उपाध्याय के निर्देशन में शोधकार्य सम्पन्न किया। प्रो. त्रिपाठी किसी भी पारम्परिक विद्यालय में नियमित रूप से छात्र नहीं रहे। पिता जी द्वारा छतरपुर में स्थापित संस्कृत विद्यालय में प्रथमा और पूर्वमध्यमा (प्रथमखण्ड) की पढ़ाई इन्होंने अवश्य की किन्तु विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान इन्होंने सागर विश्वविद्यालय में कार्यरत रहते हुए आचार्य बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान' से प्राप्त किया।

प्रो. त्रिपाठी की ज्ञान पिपासा पहले से ही अनन्त रही है। इन्होंने काशी के शीर्षस्थ आचार्यों पं. बदरीनाथ शुक्ल, पं. रामप्रसाद त्रिपाठी तथा प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी आदि को अपने विभाग में आमन्त्रित कर उनसे भी न्याय, व्याकरण, साहित्य और वेदान्त आदि के कुछ ग्रन्थों का अध्ययन किया। सागर के न्यायाचार्य पं. लक्ष्मीनारायण दुबे जी (काशी के सुप्रसिद्ध विरला संस्कृत महाविद्यालय के न्याय प्राध्यापक) से रामरुद्री और दिनकरी के साथ न्यायसिद्धान्त मुक्तावली आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। वास्तव में स्वाध्याय ही प्रो. त्रिपाठी की सबसे बड़ी गुरु परम्परा है।

विवाह एवं सन्तति

राधावल्लभ त्रिपाठी का विवाह 27 मई सन् 1974को सत्यवती जी के साथ सम्पन्न हुआ। सत्यवती का जन्म 4 . 8.1955 को राजगढ़, मध्यप्रदेश में हुआ था। सत्यवती जी के परिवार में माता–पिता, दो बहनें एवं भाई अरविन्द हैं। पिता श्री शिवदत्त भारद्वाज प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त होकर 'विश्वप्रेममंदिर' आश्रम में अपनी आध्यात्मिक साधना में संलग्न रहते हुये शिवसायुज्य को प्राप्त हुये। आप अरविन्द व विवेकानन्द दर्शन के विख्यात विद्वान् थे। माता श्रीमती गीता देवी भी दिवंगत हो चुकी हैं। भाई डॉ. अरविन्द भारद्वाज ब्यावरा महाविद्यालय में फिजिक्स के प्रोफेसर हैं। सत्यवती के पिता एवं श्वशुर परस्पर गुरु भाई थे। इनका पूर्व परिचय ही इस विवाह सम्बन्ध का आधार बना। विवाह के समय सत्यवती की आयु 19 वर्ष थी। विवाह बन्धन में बंधकर वह सागर आ गईं, जहाँ आचार्य पण्डित बच्चूलाल अवस्थी, पं. भगीरथ प्रसाद मिश्र, प्रो. कान्ति कुमार जैन तथा त्रिलोचन जैसे विद्वानों से शिक्षा प्राप्त करने का उन्हें अवसर प्राप्त हुआ। सत्यवती ने विवाह के अनन्तर स्नातकोत्तर कक्षा में प्रवेश लिया तथा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुईं। तदनन्तर सागर विश्वविद्यालय से ही उन्होंने शोधोपाधि अर्जित की।

डॉ. सत्यवती त्रिपाठी ने लगभग बीस वर्षों तक डॉ. हरीसिंहगौर विश्वविद्यालय, सागर के हिन्दी विभाग में अध्यापन कार्य किया। उन्होंने हिन्दी काव्यशास्त्र तथा काव्यों का विशेष अध्ययन कर अनेक पुस्तकों एवं शोधपत्रों का प्रकाशन कराया। उन्होंने श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में भी हिन्दी का अध्यापन किया। डॉ. सत्यवती त्रिपाठी ने पत्नी के रूप में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी को सारस्वत साधना के उच्च शिखर तक पहुँचाने में भरपूर सहयोग किया।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी तथा डॉ. सत्यवती त्रिपाठी सागर विश्वविद्यालय परिसर में आदर्श दम्पती के रूप में जाने जाते थे। समवयस्क मित्रों, गुरुजनों तथा प्रतिवेशियों के साथ उनके सम्बन्ध अतिमधुर रहे।

आचार्य त्रिपाठी की ज्येष्ठ पुत्री प्रियंवदा का जन्म 1977 में हुआ। प्रियंवदा ने सागर से उच्च माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर इन्दौर से एम.बी.बी.एस. उपाधि तथा लन्दन से एम्.डी. उपाधि प्राप्त की। प्रियंवदा का विवाह उज्जैन विश्वविद्यालय के आचार्य पुरुषोत्तम वशिष्ठ एवं आचार्या निशा वशिष्ठ के सुपुत्र प्रियंक से सम्पन्न हुआ। वह वर्तमान में अपने चिकित्सक पति डॉ. प्रियंक (एम.बी.बी.एस., एम्.डी.) के साथ लन्दन में चिकित्सक है। प्रियंवदा के एक पुत्र है जिसका नाम 'राघव' (जन्म –30.4.2011) है।

द्वितीय पुत्री मालविका का जन्म 1980 में हुआ। मालविका ने भी प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा सागर से प्राप्त कर अहमदाबाद से बी.टेक. उपाधि अर्जित की। इसका विवाह देश के सुप्रसिद्ध बाल रोग विशेषज्ञ डॉ. निखिल भट्टाचार्य तथा मनश्चिकित्सक डॉ. प्रतिभा भट्टाचार्य के सुपुत्र श्री सौरभ भट्टाचार्य (अहमदाबाद) से सम्पन्न हुआ। मालविका वर्तमान में पर्यावरणविद् के रूप में अमेरिका के अटलाँटा शहर में कार्यरत है। श्री सौरभ भट्टाचार्य भी वहीं अभियंता के रूप में कार्यरत हैं।

तृतीय पुत्री चिन्मयी का जन्म 11985 में हुआ। चिन्मयी की प्राथमिक शिक्षा सागर में ही सम्पन्न हुई किन्तु सन् 2002 में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के शिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक, थाईलैंड में अतिथि–आचार्य के रूप में नियुक्त हो जाने के कारण चिन्मयी की कुछ शिक्षा बैंकाक में सम्पन्न हुई। इन्दौर से बी.कॉम. उपाधि प्राप्त करने के बाद चिन्मयी ने अमिटी विश्वविद्यालय से एम.बी.ए. उपाधि अर्जित की। चिन्मयी का विवाह सम्पन्न हो चुका है। उन्होने अपनी स्वयं की संगीत संस्था की स्थापना की है। संगीत और काव्य लेखन के क्षेत्र में चिन्मयी ने स्वल्प समय में प्रभूत यश अर्जित किया है। उसके अनेक संगीत एलबम बन चुके हैं तथा अमेजोन इंटरनेशनल बुक्स से अंग्रेजी में एक मौलिक कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है।

बन्धु बान्धव

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म साहित्यिक समृद्धि से ओतप्रोत परिवार में हुआ। इनके पितामह पं. रामप्रसाद त्रिपाठी जी राजगढ़ के राजदरबार में लेखपाल थे। पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी (फरवरी 1921–अप्रैल 1990) अपने समय के विख्यात विद्वान् एवं समीक्षक थे। संस्कृत में एम्.ए., पीएच्.डी. होने के साथ ही उन्होंने साहित्यरत्न एवं गीताविशारद उपाधियाँ भी प्राप्त की। उनके द्वारा लिखित संस्कृतसुबोधिनी, गोकुलगीताञ्जलि, श्रीहर्ष के रूपक तथा अभिनव सतसई जैसे ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

बाल्यकाल से ही डॉ. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी जी की साहित्यिक अभिरुचि रचनात्मक रूप में प्रतिफलित हुई। हिन्दी तथा संस्कृत में कहानियाँ, कविताएँ तथा गद्यलेखन में निरंतर सक्रिय रहे। हिन्दी में इनकी पहली कहानी अपने समय की श्रेष्ठ साहित्यिक

पत्रिका 'माधुरी' (१६३३) में प्रकाशित हुई, तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान, मध्य–भारत सन्देश आदि पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित होती रहीं। संस्कृत में अनेक कविताएँ 'अमृतलता' तथा दूर्वा आदि अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं।

गीता, श्रीमद्भागवत तथा रामरक्षा और अरविन्ददर्शन से ये विशेष प्रभावित रहे और इनके आदर्शों को स्वयं चरितार्थ करते रहे। नरसिंहगढ़ में वर्षों तक गायत्री परिवार के कुशल संचालन तथा गायत्री मंदिर के निर्माण में अग्रणी भूमिका रही। छतरपुर में मानससम्मेलन, राजगढ़ में गीतामानसपारायण समिति की स्थापना तथा संस्कृत नाटकों के प्रदर्शन, कविगोष्ठियों तथा अन्यान्य सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों के सूत्रधार रहे। गीता और रामचरितमानस पर मर्मज्ञ प्रवचनकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। स्वामी हरिओम जी महाराज के शिष्यों में अग्रगण्य रहे। छतरपुर में संस्कृत परिषद् की संस्थापना और उसके तत्त्वावधान में संस्कृत पाठशाला का संचालन किया। नरसिंहगढ़ में संस्कृतप्रचारसमिति का गठन तथा संस्कृत परीक्षाओं का संचालन किया। संस्कृत कक्षाओं तथा संस्कृत शाला का निरूशुल्क संचालन करते रहे।

पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी जी की संगीत, नाटक तथा विभिन्न ललित कलाओं में सक्रिय अभिरुचि रही। 1986 में इनका साहित्यिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक क्षेत्रों में योगदान के लिये नरसिंहगढ़ में नागरिक अभिनन्दन किया गया।

डॉ. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्यापन के साथ स्वयं के प्रयत्नों से स्वाध्यायी छात्र के रूप में इंटर, बी.ए. तथा एम.ए. सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं और बी.ए. में आगरा विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। 1956 में शासकीय महाविद्यालय, छतरपुर में प्राध्यापक नियुक्त हुए तथा वहाँ संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत रहे। शासकीय महाविद्यालयीन सेवा में रहते हुए 1978 में सेवानिवृत्त रहे।

पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी अपने तीनों पुत्रों हरिवल्लभ, राधावल्लभ, ओमप्रकाश एवं पुत्री रुक्मिणी के साथ प्रसन्नता पूर्वक गृहस्थ जीवन का निर्वाह कर रहे थे कि अकस्मात् पत्नी गोकुल बाई का निधन हो गया। शासकीय सेवा में बार–बार स्थानान्तरण के कारण अकेले गृहस्थ जीवन का निर्वाह न कर पाने तथा तीनों पुत्रों एवं पुत्री के लालन–पालन में अपने को असमर्थ पाकर उन्होंने श्रीमती शकुन्तला देवी से विवाह किया। श्रीमती शकुन्तला देवी से उन्हें 5 पुत्र प्राप्त हुए। जिनके नाम 1. श्री सत्यप्रकाश त्रिपाठी 2. श्री आनन्द प्रकाश त्रिपाठी ३. श्री महेश त्रिपाठी 4 श्री प्रदीप त्रिपाठी तथा 5. श्री बालकृष्ण त्रिपाठी हैं।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपने अध्ययन के प्रति समर्पण एवं प्रोत्साहन से सभी भाईयों को शिक्षा दीक्षा हेतु प्रेरित किया। पण्डित गोकुल प्रसाद त्रिपाठी की सारस्वत साधना एवं पुण्यों के फलस्वरूप इस परिवार के सभी सदस्य सुशिक्षित एवं सुप्रतिष्ठित हैं।

श्री हरिवल्लभ त्रिपाठी आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के अग्रज हैं। आप मध्यप्रदेश सरकार में अभियन्ता के रूप में कार्य सम्पादन कर सेवा निवृत्त हैं। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुज श्री ओमप्रकाश त्रिपाठी मध्यप्रदेश सरकार के चिकित्सा विभाग से मुख्य चिकित्सक के रूप में सेवा निवृत्त हैं। इनके छोटे भाई श्री आनन्द प्रकाश त्रिपाठी रेलवे विभाग में कार्यरत हैं। अन्य अनुज श्री सत्यप्रकाश त्रिपाठी, श्री महेश त्रिपाठी, श्री प्रदीप त्रिपाठी एवं श्री बालकृष्ण त्रिपाठी पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी के

पदचिह्नों पर चलते हुए मध्यप्रदेश सरकार में अध्यापक की भूमिका निभा रहे हैं।

पुरस्कार एवं सम्मान–

प्रो. त्रिपाठी जी को उनकी सारस्वतसाधना के लिये अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सभाजित किया जाता रहा है। जिनमें उनकी साहित्य रचना "सन्धानम्" के लिये प्राप्त साहित्य अकादमी पुरस्कार (1994), कनाडा का रामकृष्ण संस्कृत पुरस्कार (1998), कालिदास पुरस्कार (1999), शंकर पुरस्कार (2000), तथा राष्ट्रपतिसम्मान आदि प्रमुख हैं। अब तक उन्हें लगभग चालीस पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

प्रो. राधावल्लभ की साहित्यिक रचनाएं

प्रो. त्रिपाठी जी ने अनेक साहित्यिक कृतियों की रचना की है। उन्होंने महज १५ वर्ष की उम्र में अपनी रचना अमृतलता में प्रकाशित करायी जो उस समय की प्रतिष्ठित पत्रिका थी। उन्होंने संस्कृत के अलावा हिन्दी में भी गद्य एवं नाट्य लेखन किया जो प्रकाशित भी हैं किन्तु उनकी संस्कृत रचनाओं की ही चर्चा प्रस्तुत प्रसङ्ग में अभीष्ट है।

संस्कृत में रचित उनकी कृतियों में प्रेमपीयूषम्, संधानम्, लहरीदशकम्, सम्प्लवः, संसरणम्, अभिनवशुकसारिका, तण्डुलप्रस्थीयम्, सुशीलानाटकम्, गीतधीवरम्, विक्रमचरितम्, उपाख्यानमालिका, अन्यच्च, स्मितरेखा, ताण्डवम्, अनुभववीथी आदि हैं। प्रो. त्रिपाठी जी ने हिन्दी और अंग्रेजी काव्यों का संस्कृत में अनुवाद भी किया है। पञ्चवटी, रूमीरहस्यम्, रूमीपञ्चदशी, अहम् ईक्षे आंशिकानि पर्यवेक्षितानि तथा अर्धकथानकम् आदि उनके अनूदित काव्य हैं। हरिवंशरायबच्चन की मधुशाला का भी समच्छन्द संस्कृत अनुवाद प्रकाशनाधीन है। त्रिपाठी जी द्वारा अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम् नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भी लिखा गया जो विद्वत्समाज में चर्चित रहा। प्रो. त्रिपाठी की गद्य, पद्य और नाट्य रचना में समान गति है। नाट्यशास्त्र में अनुसंधान तथा संस्कृत नाटकों के प्रयोग के क्षेत्र में भी उनका महनीय योगदान रहा है। उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है –

नाटक

प्रेमपीयूषम् – भवभूति की कविता से प्रभावित होकर प्रो. त्रिपाठी ने एम्.ए. कक्षा में पढ़ते हुए इस नाटक की रचना की। यह कवि की प्रथम नाट्य कृति है। महाकवि भवभूति एवं राजकुमारी शशिप्रभा के प्रणय प्रसंग को कवि ने यहाँ नाट्यविषय बनाया है। जिसका विस्तार सात अंकों में किया गया है।

तण्डुलप्रस्थीयम् – प्रो. त्रिपाठी जी की तण्डुलप्रस्थीयम् नामक नाट्यकृति लोककथा पर आधारित प्रकरण कोटिक रचना है। निरञ्जन, व्योमकेष, धारिणी, श्यामा, शारदा, प्रज्ञा, धृति, स्मृति और मति जैसे पात्रों को लेकर कवि ने अपनी इस नाट्यरचना में लौकिकता एवं दार्शनिकता का सुन्दर समन्वय किया है। उसका नायक सीधा–सादा एक चरवाहा है किन्तु बाद में शारदा जैसी विदुषी से उसका मिलन होता है। समस्त विद्याओं में प्रवीण होकर वह अपने गाँव तक कुल्या ले जाने में सफल होता है। तण्डुलप्रस्थीयम् की वस्तु कविकल्पित है, संघटना एवं कथायोजना के कारण नाट्यरचना प्रभावपूर्ण बन पड़ी है।

प्रेक्षणसप्तकम् – इस नाट्यसंग्रह में सोमप्रभम्, मेघसंदेशम्, धीवरशाकुन्तलम्, मुक्तिः, मशकधानी, गणेशपूजनम् और प्रतीक्षा शीर्षक सात प्रेक्षणक संकलित हैं। समस्त नाटक

समसामयिक समस्याओं पर आधारित होने के साथ अपने युग के यथार्थ के सम्प्रेषण में समर्थ हैं। प्रेक्षणसप्तकम् में संग्रहीत सभी प्रेक्षणक वर्तमान समाज से सम्बद्ध हैं तथा जनमानस की चिन्ता को व्यक्त करते हैं।

सुशीलानाटकम् – यह लघु प्रेक्षणक है। इस नाटक की रचना का मूल निम्नलिखित श्लोक है –

हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजङ्गदष्टं
देशान्तरे स्वयमहं गणिकाऽस्मि जाता।
पुत्रं पतिं समधिगम्य च वृक्षदग्धं
शोचामि गोपगृहिणी कथमल्पतक्रम्।।

नाटककार ने आचार्य बच्चूलाल अवस्थी से इस श्लोक को सुनकर सुशीला नाटक की रचना की, इसमें सुशीला, उसका पति देवशर्मा, पाँच स्त्रियाँ, राजा मणिभद्रसिंह, राजा सबलसिंह तथा राजा कृष्णप्रतापसिंह पात्र हैं।

यह नाटक स्त्री अधिकारों पर लिखी गयी लघु किन्तु प्रभावपूर्ण नाट्यकृति है। स्त्री जीवन की आम घटनाओं और उससे जुड़े अनेक मर्मस्पर्शी प्रश्नों को इस नाटक में उठाया गया है। इस नाटक की नायिका सुशीला सामन्तवादी शोषण में अपने पूरे जीवन को गुजारती है। उसका कोई ठौर–ठिकाना उसे नज़र नहीं आता।

पद्य साहित्य

सन्धानम् – इस काव्य पर राधावल्लभ त्रिपाठी को 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सभाजित किया गया। 'सन्धानम्' नामक काव्यसंग्रह अन्तर्जवनिकम् बहिर्जवनिकम्, लहरीलीलायितम्, गीतवल्लरी तथा नमोवाक् शीर्षक पाँच खण्डों में विभक्त हैं, जिनमें 53 लघुकाव्य संग्रहीत हैं। ग्रंथ के आदि में प्रस्तावना लेखन के व्याज से कवि अपनी निर्भयता को व्यक्त कर देता है–

यदि नो शृणुते कश्चिद् यदि नैव पठत्यपि।
तेन मे किमिह च्छिन्नं विच्छिन्ने विकले भवे।।

(सन्धानम्, पृ. 1)

वह भवभूति की भाँति विस्तृत पृथ्वी में किसी काल में उत्पन्न होने वाले पाठक की आशा में काव्य लेखन नहीं करता। इस विच्छिन्न और विकल भव में अगर कोई उसके काव्य को नहीं पढ़ता तो उससे उसका कुछ बिगडने़ वाला नहीं। उसका काम है लिखना सो उसने लिख दिया। पढना़ न पढना़ पाठक का अपना काम है। उसकी चिन्ता कवि को नहीं है। उसे जो कहना है खरा सत्य कहना है।

त्रिपाठी जी को प्राचीनता, विरासत और उसके प्रति किये गये किसी के त्याग पर गर्व है। सागर नगर के मध्य निर्मित तालाब (जिसके कारण ही सम्भवतरू इस नगर का नाम सागर पड़ा) के बारे में लोक में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि बहुत खोदे जाने के बाद भी जब तालाब में जल नहीं निकला तो किसी बंजारे ने उसके लिए नरबलि दी और सागर का तालाब लबालब भर गया।

आज उस तालाब में लोट रही भैंसों एवं सुअरों के कारण, नगर की गन्दगी तथा लोगों द्वारा फैलाये गये प्रदूषण के कारण जल की एक बूँद भी शुद्ध नहीं बची। वह तालाब

अतिदीन दशा को प्राप्त हो गया है। उसके घाटों में अब स्नान कहाँ? वह तो किसी भी सहृदय को दुरूखी करता है।

नेताओं द्वारा उनकी शुद्धि का बार–बार आश्वासन दिया जाना कवि को खलता है। वह जानता है कि इनके आश्वासनों से इस तडाग की दशा में कोई परिवर्तन आने वाला नहीं। यह तालाब तो मानो इन्हीं विवेकभ्रष्टों के पतन को सूचित कर रहा है–

स अश्वस्तो नेता वदति बहुभङ्गीभणितिभिः।
करिष्यामः शुद्धिं सरस इति चाश्वासयति सः।।
परिश्वस्तं जीर्णं भवनमिव शीर्णं किमु सरो।
विवेकभ्रष्टानां पतनमभितः सूचयति तत्।।

(सन्धानम्, पृ. 17)

लहरीदशकम् – लहरीदशकम् को उ.प्र. संस्कृत अकादमी के कालिदास पुरस्कार से तथा सम्प्लवरू को म.प्र. शासन के कालिदास पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आचार्य त्रिपाठी की दूसरी काव्यकृति 'लहरीदशकम्' है। इसमें दस लहरी काव्य संकलित हैं– वसन्तलहरी, निदाघलहरी, प्रावृड्लहरी, धरित्रीदर्शनलहरी, जनतालहरी, रोटिकालहरी, नर्मदालहरी, मृत्तिकालहरी, अद्यापिलहरी और प्रस्थानलहरी।

वसन्तलहरी में वसन्तवर्णन के लिए उद्यत कवि प्रकृति में उसका अनभुव करना चाहता है, परन्तु आज के शहरी जीवन में वसन्त उसे किसी अन्य रूप में दिखता है। 'द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मम्' जैसे पारम्परिक वसन्त वर्णन के अनुकरण में अपने को न उलझा कर कवि आज की वास्तविकता में उसका साक्षात्कार करता है और उसके आज के स्वरूप को पाठक के सामने रखता है।

सम्प्लवः – सम्प्लव नामक काव्यसंग्रह सात आवर्तों में विभक्त है। इस संग्रह के कुछ काव्यों में कवि की जीवन दृष्टि एवं उसकी दार्शनिकता तथा गम्भीरता भी प्रतिफलित हुई है। कुछ आधुनिक विधाओं में रचित काव्य भी यहाँ संकलित है। यह काव्य मध्यप्रदेश के कालिदास सम्मान से अलंकृत है। काल की विकरालता तथा मनुष्य की लोलुपता से कवि क्षुब्ध है। आज हत्या, लूट और बलात्कार आम घटनाएँ बन गई हैं। कभी कोई ऐसा संयोग ही हो सकता है कि समाचार पत्र में ऐसे समाचार न हों। इसमें भी आधुनिक भाव बोध से संवलित काव्य संगृहीत हैं।

गीतधीवरम् – 'गीतधीवरम्' कविवर राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित रागकाव्य है। यद्यपि यह काव्य जयदेव की सरणि में रचा गया है किन्तु कवि अपने धरातल एवं भावबोध का स्वयं निर्माण करता है। प्राचीनता और नवीनता के मध्य अभिनव शृंखला का निर्माण करता हुआ कवि यहाँ जीवन के अनेक पक्षों को परिभषित करता है। नौ सर्गों में विभक्त इस काव्य में अनेक ऐसी गीतियों का संकलन है जो अति गम्भीर एवं दार्शनिक हैं। यत्र तत्र उसके शब्द सौन्दर्य एवं भाव सौन्दर्य सहज भी बन पड़े हैं–

लहरीषु मया गीतिर्लिखिता रचिता नूतनशब्दतरी।
छन्दस्सु मया जगती रचिता कलिता नूतन भावझरी।।

(गीतधीवरम्, गीति, 7)

सागर और धीवर के प्रतीक से कवि ने इस ग्रन्थ में जिन गम्भीर एवं दार्शनिक पक्षों का उन्मेष किया है वे निश्चय ही उनकी जीवन दृष्टि के द्योतक हैं। ऐसा लगता है

कि यह जीवन ही यहाँ सागर के रूप में कल्पित है तथा जीव धीवर है। ग्रन्थ की भूमिका ने कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने इसे 'प्रतीकरागकाव्य' की कोटि में रखा है। (गीतधीवरम्, भूमिका, पृ. 7)

संसरणम्

यह काव्यसंग्रह श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ से प्रकाशित है। यह काव्यसंग्रह पाँच सरणियों में विभक्त है। प्रथम 'गीतप्रवाह' शीर्षक सरणि के अन्तर्गत 25 लघु काव्य संकलित हैं–मग्नम्, अकस्मात्, विश्वासः, हसन्ती, दोषः, देहली, मुग्धता, शिष्टता, हस्तकम्, मुक्तिः, द्वारे, भाषायाः, गानम्, दीर्णम्, निद्रा, कृतज्ञोऽहम्, दैनन्दिनी, पन्था, केयम्, न जात्वासीत्, मनोहरः, मनोरथः, ईश्वरः, यात्रा और मुषितम्।

त्रिपाठी जी का " सौभाग्यनूपुरम्" नामक विशालतम महाकाव्य भी सद्यः प्रकाशित हुआ है। इस महाकाव्य का उपजीव्य तमिल भाषा में रचित "सीलप्पदिकार" है। कवि ने उसे रामायण और महाभारत की तरह उत्कृष्ट रचना माना है –

या रामायणभारतादिगुरुभिः काव्यैस्तुलामर्हति।
प्रत्यग्रा च तथा विभाति करुणागाथा'धुनाप्येव या।
या सीलप्पदिकारनाम्नि महति ग्रन्थे प्रथां प्राप तां
कण्णक्याः कलयामि तामिलकथां वृत्तैः पुनः संस्कृतैः॥ 1.2॥

इस महाकाव्य में चालीस सर्ग हैं। समग्र महाकाव्य में रामायण और महाभारत की शैली का अनुगमन किया गया है। अनुष्टुप छन्द का प्रयोग प्राधान्येन हुआ है। महाकवि वाल्मीकि के जीवन पर आधारित त्रिपाठी जी का अन्य महाकाव्य भी शीघ्र प्रकाश्य है।

गद्यसाहित्य

त्रिपाठी जी की अब तक आठ गद्य कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं– 1. विक्रमचरितम्, 2. उपाख्यानमालिका, 3. अभिनवशुकसारिका, 4. अन्यच्च 5. ताण्डवम्, 6. अनुभववीथी 7. स्मितरेखा (कथासंग्रह) तथा 8. आत्मनाऽऽत्मानम्। इन कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है –

विक्रमचरितम्

प्रो. त्रिपाठी जी का विक्रमचरित आख्यानकोटिक गद्यकाव्य है। पञ्चतन्त्र में व्यवहृत निदर्शना विधा का आश्रय लेकर कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की है। यह पशुपात्र प्रधान तथा बीभत्स रस आख्यान है। घूकर नामक सूकर, विक्रमसिंह नामक सिंह, चतुरिका नामक लोमड़ी तथा दूरदर्शी नामक तोते जैसे पात्रों को लेकर कवि ने इस आख्यान की रचना के बहाने हमारे युगसत्य को प्रस्तुत किया है।

उपाख्यानमालिका

यह कृति अपके पाठ्यक्रम में निर्धारित है। उपाख्यानमालिका विचित्रोपाख्यान, मायाविन्युपाख्यान, अभिनव– शाकुन्तल तथा मदनदहन शीर्षक चार उपाख्यानों का संग्रह है। संस्कृत गद्य साहित्य में कवि का यह अभिनव प्रयोग माना जा सकता है। कवि ने यहाँ पाश्चात्त्य उपन्यासकारों की कतिपय अवधारणाओं का संस्कृत गद्य में प्रयोग करने का साहस किया है।

प्रत्येक उपाख्यान का प्रारम्भ 'सूत उवाच' जैसी पौराणिक शब्दावली से हुआ है किन्तु उपाख्यान की अपनी यथार्थभूमि पाठक को पौराणिकता से आधुनिकता की ओर ले जाती है। उपाख्यानकार यहाँ अपनी यथार्थवादिता को नहीं छोड़ता। कहीं उसका यथार्थ भी अपनी सीमा का अतिक्रमण करता नजर आता है, तो कहीं वह पाठक को लोककथाओं का सा आस्वाद देता दृष्टिगत होता है।

विचित्रोपाख्यान के आरम्भ में जरद्गव की कथा उठाकर वह पाठक के मन में जितनी जिज्ञासा कौतूहल जगाता है, उतनी ही फ्रांस से जरद्गव के अन्वेषण के लिए आयी मिनी और उसके माता पिता जार्ज लुईस तथा शीबा के सम्बन्धों को लेकर भी।

उपाख्यानों की संघटनाएँ हमारी पारम्परिक लोककथाओं से संवाद करती सी दिखती हैं। कहीं जिज्ञासा के मध्य नया प्रश्न उठाकर लेखक पाठक के मन में और भी प्रबल जिज्ञासा उत्पन्न कर देता है। ग्रन्थ के आरम्भ में ही पाठक जितना जरद्गव के बारे में जानने के लिए उतावला दिखता है उतना ही फ्रांस से उसके अन्वेषण के लिए आयी मिनी के बारे में जानने के लिए भी। मिनी का जरद्गव से मिलन हो जाने के बाद भी जरद्गव का लुप्त हो जाना पुनरू पाठक के मन में जिज्ञासा को जन्म देता है। अन्त में उसके मुख से यह सुनकर कि हस्तिनापुर के गुप्तचर विभाग ने उसे अन्य देश का गुप्तचर मानकर जेल में डाल दिया जहाँ वह अतिरुग्ण हो गया। उसे मृत्यु के सन्निकट जानकर ही उन्होंने यहाँ फेंक दिया। जिसे लोग आतंकवादी मानकर भयभीत होते रहे। किन्तु मृणालिनी (मिनी) उसे उठा लेती है और तब यह पता चल पाता है कि यह आतंकवादी नहीं जरद्गव है।

आख्यानों में रहस्य एवं रोमांच का पदे–पदे सन्निवेश है। अपने कथ्य के सम्प्रेषण के लिए लेखक ने कहीं जादुई यथार्थ तो कहीं अतियथार्थ का आश्रय लिया है। यही उसका पारम्परिक गद्यबन्धों की अपेक्षा वैशिष्ट्य है और आधुनिकता भी। उसकी गद्यरचनाधारा लोक और साहित्य के मध्य सोपान – सी प्रतीत होती है। विक्रमचरित में भी अनेक ऐसे स्थल प्राप्त होते हैं। यहाँ नये मुहावरे एवं शब्दावलियाँ गढने का भी प्रयास किया गया है। कहीं–कहीं लौकिक मुहावरों का भी संस्कृतीकरण हुआ है। उदाहरणार्थ– लवणमरीचिमिश्रणसहितम् (पृ. 5)। ये यत्र गतास्ते तत्रैव लयं गतारू (पृ. 5), भित्तिस्पृष्ट इव कन्दुको द्विगुणवेगेन (पृ. 9), देहकाष्ठे घुण इव लग्रोऽभूद्रोगरू (पृ. 17) इत्यादि।

आख्यान में चमत्कार उत्पन्न करने या गम्भीरता लाने के लिए परम्परा में प्राप्त सूक्तियों का भी यहाँ सुन्दर प्रयोग किया गया है। यही शैली अन्य उपाख्यानों में भी दृष्टिगोचर होती है। आप उपाख्यानमालिका का विस्तृत अध्ययन अग्रिम इकाइयों में करेंगे।

अभिनवशुकसारिका

अभिनवशुकसारिका आचार्य त्रिपाठी जी द्वारा शुकसप्तति या मदनप्रबोधिनी की परम्परा में प्रणीत नई कथा रचना है। शुकसारिका और अभिनवशुकसारिका के मध्य लम्बा कालिक अन्तराल है। अतरू दोनों में वस्तुबोध और भावबोधों में भेद होना स्वाभाविक है। यह अवश्य है कि शुकसारिका की नायिका पति के परदेश चले जाने पर जिस प्रकार जार के पास जाने को उद्यत होती है, उसी प्रकार यहाँ शम्पा भी मंगेतर शशिधर के अमेरिका चले जाने पर गलत संगति में पड़ती है और शीलभद्र नामक तोता उसे किसी न किसी कथा के बहाने रोकने का प्रयास करता है। कथा का सम्पूर्ण ताना–बाना शम्पा, शशिधर, विनी और शीलभद्र के बीच बुना गया है। कथा

लम्बी है, उसमें अनेक अन्तरूकथाएं मिलती हैं और नई कथाओं को जन्म देती हैं।

अन्यच्च

आचार्य राधावल्लभत्रिपाठी का 'अन्यच्च' उपन्यास लोक और शास्त्र के समन्वय और मंजुल सामंजस्य का ताजा उदाहरण है। प्रतिभा और व्युत्पत्ति तथा कवि और काव्यवस्तु की एकाकारता का इतना तरोताजा उदाहरण सम्भवतरू आधुनिक संस्कृत साहित्य में कोई और नहीं। कविवर त्रिपाठी का उपन्यासनायक विशाख उनसे इतनी समानता रखता है कि वह कवि का प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। उसके दो ही लक्ष्य हैं– माँ का दर्शन और ज्ञान की प्राप्ति। अपने इन दोनो लक्ष्यों के लिए वह कुछ भी करने को तैयार है। एक स्थिति में आकर वह माँ के दर्शन से भी उदासीन हो जाता है (पृ. 53) किन्तु ज्ञान के प्रति उसकी उदासीनता कहीं भी नजर नहीं आती। उसकी ज्ञानपिपासा इतनी प्रखर है कि वह भद्रपुरी से साकेत, साकेत से हरिद्वार, हरिद्वार से बदरीनाथ तक की यात्रा करता है और तब कहीं तक्षशिलाविद्यापीठ पहुँचता है। विशाख कोई सामान्य बालक नहीं। वह अपना परिचय देता हुआ कहता है– तैत्तिरीयशाखाध्वर्युः सोमपीथी भारद्वाजगोत्रोत्पन्नो विशाखो नाम कर्कोटकपौत्रः शाखोटकतनयोऽहम् (पृ. – 8)। वह ऋषि है, वह मातृसूक्त का साक्षात्कार करता है। उस सूक्त से उसे अपनी माता का मानस साक्षात्कार होता है।

आचार्य त्रिपाठी अपनी कल्पनाप्रवणता और शास्त्रज्ञता के लिए प्रसिद्ध हैं। 'अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः' जैसी उक्तियाँ आज भी आचार्य त्रिपाठी जैसे मनस्वी मनीषियों पर ही चरितार्थ होती हैं। यहाँ जो कुछ भी कहा गया वह भी उपन्यासकार की अनुभूति है और कहते कहते जो कुछ बच गया वह भी उसी की अनुभूति का एक हिस्सा है।

ताण्डवम्

राधावल्लभ के प्रथम उपन्यास 'अन्यच्च' की भाँति उनका सद्यः प्रकाशित 'ताण्डवम्' नामक यह उपन्यास भी कश्मीर पर आश्रित है। कश्मीर का प्राचीन गौरव, राजनीति, छल, कपट, लोलुपता और पारस्परिक विद्रोह इस उपन्यास की पृष्ठभूमि कहे जा सकते हैं। विद्याव्यसनी, कलाप्रेमी किन्तु राजनीतिक दाँव–पेंचों से उपरिचित कश्मीर नरेश हर्ष (1089–1101) इस उपन्यास का नायक है। कुल मिलाकर उपन्यास हर्ष का जीवनचरित है किन्तु तत्कालीन काव्य, कला तथा साहित्यिक एवं शास्त्रीय स्मृद्धि का कोश भी।

हर्ष कल तक राजा था किन्तु उपन्यास की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि में वह कपट संन्यासी है। अपनी प्राणरक्षा के लिए नहीं, देश की रक्षा के लिए, कथासरित्सागर जैसी महान् कृति की रक्षा के लिए। मातृभूमि के प्रति उसका उत्कट अनुराग उसे मरने नहीं देता, वह उसे सुरक्षित देखकर ही मरना चाहता है, एक दम भीष्म की तरह, अन्तर केवल इतना है कि भीष्म स्वयं अपनी राष्ट्र की रक्षा में समर्थ था किन्तु हर्ष अपनों की वंचना का, राजनीतिक लोलुपता का शिकार बन कर सबकुछ खो चुका है, वह कुछ कर सकने में समर्थ नहीं, तभी तो बिल्हण को पत्र देकर चालुक्य नरेश के पास भेजता है। उत्तरापथ और दक्षिणापथ के सभी राजा एक होकर ही गजनी से आँधी की तरह आ रहे मुहम्मद को रोक सकते हैं। कोई एक उसे रोकने में समर्थ नहीं हो सकता। कश्मीर की सुरक्षा और एकमात्र बची कथासरित्सागर की प्रति की रक्षा ही उसके जीवनक का प्रयोजन है। इस कार्य को सम्पादित कर वह सुखपूर्वक मरना ही तो

चाहता है–जीवनं मम कश्मीरभुवः रक्षणे क्षपितम्, इतः प्रयामि, बिल्हण आगच्छेत्, तस्य हस्ते अस्याः भूमेः रक्षणाय यत् पत्रं चालुक्यनरेशाय विसृष्टम्, तत् तेन दत्तमिति विज्ञाय तस्मै च कथासरित्सागरस्य पुस्तकं समर्पयित्वा प्रयोजनं मम जीवनस्य अवसितं स्यात्। ततः पूरयित्वा सुखेन मृतः स्याम्।

उपन्यास की समग्र पृष्ठभूमि हर्ष की स्मृतियों पर रची गयी है। पिता कलश, पितामह अनन्यदेव तथा पितामही सूर्यमती के साथ ही सिंहासन की कड़वी अनुभूतियाँ हर्ष के मन में हैं। यह भी कहा जा सकता है कि उसका जीवन ही इन स्मृतियों से बना है। आज इसका कोई अपना नहीं, जो भी हैं सब उसके प्राणों के भूखे।

अनुभववीथी

'अनुभववीथी' आचार्य त्रिपाठी की अनुभूतियों का संकलन है। आठ अनुभूतियों में अनुभवकर्ता लेखक ने विभिन्न तथ्यों का उल्लेख किया है। इसमें संकलित लेखों कथा, संस्मरण, यात्रावृत्त, निबन्ध, ललितनिबन्ध इत्यादि अनेक प्रकार की साहित्यिक विधाओं का मिश्रण है। प्रथम तथा द्वितीय वीथियों में दिल्ली का अनुभव वर्णित है। तीसरी वीथी में देव मन्दिर का, चतुर्थ में बाजार का, पाँचवीं में शवयात्रा का, छठी में सिंहस्थ मेला का, सातवीं में मन्त्रस्य का तथा आठवीं में बारात का अनुभव वर्णित है।

स्मितरेखा

'स्मितरेखा' प्रो. त्रिपाठी जी की छह संस्कृत–कथाओं का संग्रह है। इसका प्रकाशन संस्कृतभारती, मातामन्दिर गली, झण्डेवालान, नई दिल्ली से हुआ है। इस संग्रह में "एकं रुप्यकम्, अभिनन्दनम् , वायवाः, परावर्तनम् और करुणा" शीर्षक कहानियाँ संकलित हैं। सभी कहानियाँ रोचक तथा आज के युगसत्य पर आश्रित हैं।

आत्मनाऽऽत्मानम्

डायरी काव्य विद्या में लिखित इस लघु काव्य में प्रो. त्रिपाठी जी के पूर्व पचीस वर्षों के कुछ प्रमुख डायरी लेख संकलित हैं। अधिकतर लेख विदेशयात्रा से सम्बद्ध हैं। डायरी का प्रारम्भ 5.9. 1987से हुआ है। इसमें 27.11.2010 तक के प्रसंगों का उल्लेख हुआ है।

राधावल्लभ त्रिपाठी की रचनाओं की विशेषताएँ –

त्रिपाठी जी की रचनाओं की प्रमुख विशेषताएँ उनकी सहजता, सम्प्रेषणीयता एवं यथार्थता है। अपने युग की समस्या को विषय बनाकर उन्होंने उन्हें परम्परा के आलोक में नूतन दृष्टि से देखने और परिभाषित करने का प्रयास तो किया ही है, सहृदय को उन्होंने विचार के लिए उकसाया भी है। उनका सोमप्रभम् नाटक लघुकाय होता हुआ भी दहेज के उन्मूलन में छोटे बच्चों की भूमिका का निदर्शन है। पांच वर्षीय सोमप्रभा अपने दादा–दादी के हाथों सताई जा रही अपनी माता विमला को देखकर सीधे पुलिस चौकी पहुँचती है और उसे बचाने में सफल होती है। इसी प्रकार उनके मेघसन्देशम्, गणेशपूजनम् आदि नाटकों में भी युग के यथार्थ को देखा जा सकता है। यही कारण है कि इस नाट्यसंग्रह के प्रायः सभी नाटकों का मंचन हुआ और ये पुरस्कृत भी हुए।

त्रिपाठी जी अपनी रचनाओं में अपने आसपास के परिदृश्यों को समेटने में पूर्णतरू सफल हुए हैं। वर्ण्य वस्तु की सूक्ष्म विशेषताओं की साकार उपस्थापना में वे अद्वितीय

हैं। उनका अनुभव संसार अतिव्यापक है। दीन और गरीब जनता के लिए उनके अंदर अगाध स्नेह है। अतरू उनकी रचनाओं में दीनों की दशा का स्वाभाविक चित्रण हुआ। भारतीय जनता की दुर्दशा पर कवि को इतना दुरूख है कि वह उसकी तुलना उस गाय से कर देता है जिसका दूध छूटने के बाद बुढ़ापे में लोग उसे कसाईखाने ले जाते हैं।

त्रिपाठी जी को व्यर्थ का विस्तार अभीष्ट नहीं है। अलंकारों के बरबस प्रयोग तथा मिथ्या पाण्डित्य प्रदर्शन से वे कोसों दूर दिखते हैं। आज के वातावरण और पर्यावरण का प्रत्यक्ष चित्रण उनकी विशेषता है। नगरे महिष्यः और नगरे शूकराः जैसी उनकी रचनाएँ उनकी सूक्ष्मेक्षिका की साक्षी है। इस रचनाओं में भैंसों और शूकरों के जिस यथार्थ का वर्णन कविवर त्रिपाठी जी ने किया है वह वास्तव में हमारी प्रतिदिन की घटना होकर भी त्रिपाठी जी जैसे सहृदय चिन्तक के ही काव्य का विषय बन सकी है। इन रचनाओं के व्याज से वे मानव की चिरकाल से संचित क्रूरता को भी संकेतित करते हैं। बच्चे को दूध पिलाने में मस्त शूकरी के वर्णन में कवि के यथार्थ को देखें–

एषा पाययति प्रसन्नविभवा देशागतप्रत्यया,
शावान् स्वस्तनलम्बितान् रसमिव स्वीयं पयरू शूकरी।
मातृत्वं जननीमनश्च महितं जानन्तु ते वा कथं
डिम्भ मानवडम्बरा मुहुरिमां निघ्नन्ति लोष्ठैस्तु ये।।

विक्रमचरित में घूकर शूकर और उसकी निवासस्थली के वर्णन के क्रम में कवि ने अतियथार्थता का समाश्रयण किया है। बीभत्स की सृष्टि के लिए उन्होंने कल्पना के ताने–बाने बुनने की अपेक्षा उसके यथार्थ को ही प्रस्तुत किया है। गीतधीवरम् और तण्डुलप्रस्थीयम् उनकी जीवनदर्शन को पुरस्कृत करने वाली रचनाएं मानी जा सकती है। गीतधीवरम् में कवि अनेक भावभूमियों को कुदेरता है। लय और भावों की सुन्दर मंदाकिनी में गोता लगाता हुआ सहृदय उनकी इस रचना के बार–बार आलोडन के लिए विवश तो होता ही है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य को परिभाषित करने में यद्यपि हमारा प्राचीन काव्यशास्त्र समर्थ है तथापि नये भावबोध एवं अभिनव रचनाओं को जिन मानदण्डों के आधार पर परिभाषित करने तथा परखने की आवश्यकता थी, उसके लिए नए काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की अपेक्षा तो थी ही। आचार्य त्रिपाठी जी ने अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र की रचना के बहाने इस न्यूनता को पूर्ण करने का प्रयास किया है। इस ग्रन्थ में उनकी कतिपय मान्यताएँ आयी हैं, किन्तु उन्हें परम्परा के गर्भ में खोजा जा सकता है। निष्कर्षतः यहां यही कहा जा सकता है कि त्रिपाठी जी कि रचनाधारा परम्परा और आधुनिकता को समेट कर बहने वाली ऐसी मन्दाकिनी है जिसका अपना स्वतंत्र प्रस्थान और स्वतंत्र मार्ग है। आचार्य त्रिपाठी ने अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र नामक अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ की भी रचना की है जो हमारे समय में रची गयी अभिनव काव्य विधाओं को परिभाषित करने का स्तुत्य उपक्रम है।

14.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने राधावल्लभ त्रिपाठी का परिचय प्राप्त किया। आपने यह जाना कि राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म 15 फरवरी सन् 1949 (फाल्गुन कृष्ण पक्ष तृतीया, संवत् 2005 विक्रमी) को मध्यप्रदेश के राजगढ़ जिले में पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी तथा

श्रीमती गोकुल बाई के द्वितीय पुत्र के रूप में हुआ। इनके पितामह का नाम पं. राम प्रसाद त्रिपाठी था। पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान्, कवि तथा समीक्षक थे। पिता की साहित्यिक अभिरुचि की प्रबल छाप शिशु राधावल्लभ पर पड़ी। डॉ. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी मध्यप्रदेश शासन के उच्चतर शिक्षा विभाग में (प्राध्यापक, संस्कृत) के रूप में कार्यरत रहते हुए में शासकीय महाविद्यालय, छतरपुर से सेवानिवृत्त हुए।

शिशु राधावल्लभ की वय मात्र तीन वर्ष ही थी तभी माता का देहावसान हो गया। माता गोकुल बाई का असामयिक निधन तथा शासकीय सेवा में होने से पिता का बार–बार स्थानान्तरण शिशु राधावल्लभ के लिए कष्टकर थे। पिता के साथ रहते हुए भी बालक राधावल्लभ ने 6–7 साल की आयु से ही लेखन एवं अध्ययन को अपना अवलम्ब बनाया। उनकी यह साधना विकसित होकर आज विशाल कल्पवृक्ष के रूप में हमारे सामने है। पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी ने ज्येष्ठ पुत्र हरिवल्लभ के साथ ही राधावल्लभ को भी विज्ञान एवं गणित आदि की शिक्षा की ओर अग्रसर किया। प्राथमिक शिक्षा के समय से ही राधावल्लभ अपनी प्रखर मेधा एवं अध्ययन प्रवणता के लिए विद्यालय एवं आस–पास के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गए थे। उन्होंने सन् 1965 में मध्यप्रदेश की माध्यमिकशिक्षा परीक्षा में विज्ञान विषय के साथ 82.70 प्रतिशत अंक अर्जित कर प्रदेश में प्रथम स्थान प्राप्त किया। विज्ञान एवं गणित में उनकी अप्रतिहत गति एवं अध्ययन के प्रति समर्पण को देखकर सभी लोग उनके वैज्ञानिक होने की कल्पना करते थे। पिता भी उन्हें इस ओर अग्रसर होते देख प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे किन्तु समुद्र की लहरें समुद्र की गोद में ही विश्राम लेती हैं, राजहंस अनन्त आकाश को नापकर ही शान्ति पाता है, चातक की प्यास समुद्र जल नहीं, स्वाती की बूँद ही मिटा पाती है। किशोर राधावल्लभ का मन विज्ञान एवं गणित विषयों के अध्ययन में नहीं रमा। भारतीय परम्परा की अनन्त एवं ममतामयी गोद के लिए आतुर उनका मन विज्ञान से विमुख हो कर संस्कृत अध्ययन के लिए उन्मुख हो उठा।

भारतीय विचार धारा विद्या को पूर्व जन्म का अर्जित आत्मस्थ कोश मानती है। राधावल्लभ त्रिपाठी इसके साक्षात् उदाहरण हैं। विज्ञान विषय का इतना उत्कृष्ट ज्ञान उन्हें कालान्तर में महान् चिकित्सक या अभियन्ता बना सकता था। उनके बड़े भाई श्री हरिवल्लभ त्रिपाठी विज्ञान का अध्ययन कर प्रसिद्ध अभियन्ता बने तथा अनुज श्री ओमप्रकाश त्रिपाठी विज्ञान विषय की पढ़ाई कर चिकित्सक के रूप में विख्यात हुए किन्तु राधावल्लभ को तब तक संस्कृत भाषा और उसके निहितार्थ का ज्ञान हो चुका था। उन्होंने बहुत छोटी उम्र में अभिज्ञानशाकुन्तल और कादम्बरी जैसे ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था तथा उनके रसपाक से पूर्णतरू परिचित हो चुके थे, अतरू स्नातक कक्षा में संस्कृत विषय लेकर महाराज महाविद्यालय, छतरपुर में अध्ययन प्रारम्भ किया और 1968 में विश्वविद्यालय की वरीयता सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया। तदनन्तर उच्चतर एवं उच्चतम शिक्षा की लालसा से राधावल्लभ सागर आ गये। उस समय मध्यप्रदेश में सागर विश्वविद्यालय उच्चशिक्षा का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। प्रो. रामजी उपाध्याय, डॉ. वनमाला भवालकर, डॉ. विश्वनाथ भट्टाचार्य जैसे तत्कालीन विद्वानों के कारण अध्ययन एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में संस्कृत विभाग, सागर विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा छात्रों के आकर्षण का केन्द्र थी। राधावल्लभ ने यहाँ एम्.ए. (संस्कृत) में प्रवेश लेकर अध्ययन प्रारम्भ किया और 1970 में 82 प्रतिशत अंक अर्जित कर कला संकाय में प्रथम रहे। उन्होंने सागर विश्वविद्यालय से ही योगविज्ञान में डिप्लोमा (1970), जर्मन भाषा में प्रमाणपत्रोपाधि (1971) तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत

विश्वविद्यालय से (1971) भाषाविज्ञान में प्रमाणपत्रोपाधि प्राप्त की।

प्रो. त्रिपाठी जी के रचना संसार का भी आपने संक्षिप्त परिज्ञान प्राप्त किया। आपने देखा कि उन्होंने गद्य,पद्य और नाटक आदि समस्त विधाओं में कलम उठायी है। उनका लेखन आधुनिक युग की विभिन्न समस्याओं के पाठकों के सामने उपस्थापित करता है तथा उन्हें विचार के लिये प्रेरित करता है।

14.5 शब्दावली

अभिज्ञानशकुन्तल – महाकवि कालिदास का विश्वप्रसिद्ध नाटक

कादम्बरी – महाकवि बाण भट्ट की महनीय रचना

अन्न्यच्च – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित उपन्यास

ताण्डवम् – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित उपन्यास

स्मितरेखा – त्रिपाठी जी की कथाओं का संग्रह

सन्धानम् – त्रिपाठी जी का काव्यसंग्रह

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. राधावल्लभ की सारस्वत – साधना , रमाकान्त पाण्डेय , ईस्टर्न बुक लिन्कर्स, दिल्ली, 2013
2. राधावल्लभ की समीक्षा – परम्परा , रमाकान्त पाण्डेय , ईस्टर्न बुक लिन्कर्स, दिल्ली, 2013
3. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी , कुसुम भूरिया दत्ता, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2014
4. संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास, चतुर्थ भाग, राधावल्लभ त्रिपाठी, भारतीय बुक कार्पोरेशन, नयी दिल्ली, 2018

14.7 बोध प्रश्न

1. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म कब और कहाँ हुआ?
2. राधावल्लभ त्रिपाठी की पारिवारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिये।
3. राधावल्लभ त्रिपाठी की नाट्यकृतियों का परिचय दीजिये।
4. राधावल्लभ त्रिपाठी की पद्यकृतियों का परिचय दीजिये।
5. राधावल्लभ त्रिपाठी की गद्यकृतियों का परिचय दीजिये।

14.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. राधावल्लभ की समीक्षा – परम्परा, रमाकान्त पाण्डेय, ईस्टर्न बुक लिन्कर्स, दिल्ली, 2013
2. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, कुसुम भूरिया दत्ता, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2014।

इकाई 15 उपाख्यानमालिका – प्रथम उपाख्यान (विचित्रोपाख्यान)

इकाई की रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 उपाख्यानमालिका – प्रथम उपाख्यान (विचित्रोपाख्यान)

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 सन्दर्भग्रन्थ

14.7 बोध प्रश्न

15.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

15.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- उपाख्यानमालिका के प्रथम उपाख्यान में वर्णित उपाख्यान की विषय वस्तु का परिज्ञान प्राप्त कर सकेगे।
- प्रथम उपाख्यान में वर्णित पात्रों के बारे में जान सकेगे।
- उपख्यानमालिका के प्रथम उपाख्यान की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- इस उपाख्यान के कठिन शब्दों का अर्थ जान सकेंगे।
- प्राचीन कथावस्तु की आधुनिक पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेगे।

15.2 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने राधावल्लभ त्रिपाठी का परिचय प्राप्त किया। आपने जाना कि आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी इस युग के महान् साहित्यकार हैं। उन्होंने गद्य, पद्य और नाटक, तीनों ही विधाओं में विपुल लेखन किया है। आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित उपाख्यानमालिका उनकी महत्त्वपूर्ण कृति है जो विभिन्न उपाख्यानों के द्वारा समकालीन समस्याओं से पाठकों को परिचित कराती है। उपाख्यानमालिका में कुल चार उपाख्यान हैं। जिनमें प्रथम उपाख्यान का शीर्षक "विचित्रोपाख्यान" है। मायाविन्युपाख्यान, अभिनवशाकुन्तलम्. मदनदहनम् क्रमशः द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ उपाख्यान हैं। इस इकाई में आप "विचित्रोपाख्यान" का अध्ययन करेंगे। विचित्रोपाख्यान चार अध्यायों में विभक्त है। इसका प्रारम्भ पौराणिक शैली में होता है। विषमकाल के आने पर नैमिषारण्य में अस्सी हजार ऋषियों ने सूत जी से विचित्र उपाख्यान सुनाने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना पर सूत जी उपाख्यान सुनाने लगे। सूत जी ने कहा दृ हस्तिनापुर के पास एक विचित्र देश है। उस देश के घने जंगल की गुफा में एक भालू रहता था, जिसका नाम जरद्गव था। उस भालू के बारे में कोई कुछ विशेष नहीं जानता था। उसके बारे में बहुत प्रकार की किंवदन्तियाँ फैली थीं। उसके अत्याचार से सभी परेशान

थे। वह भोली भाली युवतियों को उठा लेता था। जरद्गव का यह वृत्तान्त पूरे विश्व में फैल गया। यद्यपि उसे किसी ने देखा नहीं था तथापि सब लोग अपने अपने अनुसार उसकी बात करते थे।

उस जरद्गव का पता लगाने के लिये फ्राँस देश की मिनी नामक एक लडकी आयी। वह किसी तरह उस वन में पहुँची जहाँ जरद्गव रहता था। इस मिनी की कथा भी विचित्र और आश्चर्यजनक ही है। वह लुइस और शीबा की पुत्री थी। लुइस फ्राँस का निवासी था तथा शीबा थाईलैण्ड की रहने वाली थी। दोनो की मुलाकात एक जहाज में् हुयी और दोनो में प्रेम हो गया। लुइस कुछ दिनों तक शीबा के घर थाईलैण्ड में रहा फिर दोनो फ्राँस चले गये। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद दोनो का विवाह विच्छेद हो गया। मिनी अपनी माँ के पास रहती थी किन्तु माँ की मृत्यु के बाद वह अपने पिता लुइस के पास आगयी। लुइस भी बहुत दिनों तक नहीं जी सका। मिनी जरद्गव के अन्वेषण के लिये वन वन भटक रही थी। उसके प्राणों में अनेक बार संकट आये, वह अपने जीवन की आशा भी खो बैठती थी किन्तु हिम्मत नहीं हारी। उसकी मुलाकात जरद्गव से होती है दोनो के मध्य काफी वाद दृ विवाद भी होता है किन्तु परिस्थिति वश मिनी को उसके साथ रहना पडता है। वह मिनी का नाम मृडालिनी रख देता है। मृडालिनी जरद्गव को बदलने का बहुत प्रयास करती रही किन्तु उसे बदल नही पायी। मृडालिनी समाजसेवा के कार्य में लग गयी। वह दिन भर विचित्र देश के विकास में लगी रहती। जरद्गव के लिये उसके पास समय ही नहीं होता। अन्ततः जरद्गव उसे छोडकर कहीं चला गया। मिनी जरद्गव को खोजना चाहती थी किन्तु उसे समय नहीं मिला। एक दिन नगर के चौराहे में उसने किसी को उलटे मुँह पडे हुये देखा। पास जाकर देखने पर उसे पता चला कि वह जरद्गव है। जरद्गव ने उसे बताया कि पुलिस ने उसे कारागार में डाल दिया था। कुछ दिनों बाद वहाँ उसका स्वास्थ्य खराब होने लगा। यह देखकर पुलिस ने उसे कारागार से बाहर कर दिया। जरद्गव की दुर्दशा देखकर मिनी उसे लेकर चिकित्सालय चली गयी।

यह उपाख्यान अत्यन्त विस्तृत है। आप इस इकाई में इस उपाख्यान के सम्पादित अंशों का अध्ययन करेंगे।

15.3 सूत जी से मुनियों की प्रार्थना – (प्रथम अध्याय)

नारायणं नमस्कृत्य नरस्यैव ह्रदि स्थितम्।
उपाख्यानं यथाबुद्धि विचित्रं विलिखयाम्यहम् ॥

अथ प्रथमं कथमिदं विचित्रोपाख्यानं धरायामवतीर्णमितीदम्प्रथमतया वर्ण्यते। एकदा शिशिरसन्ध्यायां प्रभवति हिमे प्रवहत्यस्थिच्छेदके वाते नैमिषारण्यस्य सङ्कीर्णे प्राङ्गणे शौनकादयोऽष्टाशीतिसहस्रं मुनयः यथाकथञ्चिन्माताः महामतेः सूतस्य सम्मुखमासीनाः शैत्येन प्रकम्पिताः देशस्य दुर्दशया दूनह्रदया ऋषिसमाजमध्ये प्रज्ज्वलता वह्निकुण्डेन कथमपि शैत्यबाधां विनिवारयन्तः कालचक्रपरिवर्तनं कलयाम्बभूवुः। शीतबाधया दन्तवीणां निनादयन्तं सूतं शौनक आह दृ महर्षे ! विषमोऽयं कालः। सर्वतो विडम्बना विजृम्भते। आरक्षणे सत्यपि अरक्षितेव, क्षरणं गतेव क्षितिः प्रतिभाति। भगवतो बुद्धस्य विहारस्थली दस्यूनां विहारस्थली जाता। सीमान्ते षडयन्त्रविशारदैरास्कन्द्यते शारदादेशः। मगधेषु प्रभवन्ति गर्दभाः। केसरी शृगालायते। अर्जुनोऽपहतगाण्डीवो विमनस्कायते। नृसिंहोऽनरोऽसिंहो जातः। इन्द्रो विच्छिन्नेन्द्रशासनः समजनि। उच्छिद्यन्ते वृक्षा वनानाम्।, व्याहन्यन्ते पशवः। विहाय स्वर्गं नृत्तगीतवादित्रं च धरावतीर्णा मेनका तेषां रक्षायै यतते।

उद्विग्नाश्च सन्ति समं सर्वेऽपीमे मुनयः शीत्या भीत्या च ईत्या च प्रपीडिताः। अतः कथ्यतां किमपि विचित्रमुपाख्यानम्, येन विनोदोऽस्यावसादस्य जायते।

शब्दार्थ– इदम्प्रथमतया = पहली बार, शिशिरसन्ध्यायाम् = ठण्डी के समय की शाम को, अस्थिच्छेदके = हड्डी को छेदने वाली, अष्टाशीतिसहस्रम् = अस्सी हजार , दूनहृदयाः = दुखी हृदय वाले , कालचक्रपरिवर्तनम् = समयचक्र के बदलाव को, अपहतगाण्डीवः = गाण्डीव नामक अपने धनुष को हटाकर , केसरी = सिंह , नृत्तगीतवादित्रम् = नाच , गाना और बाजा।

अनुवाद – मै मनुष्य के हृदय में स्थित नारायण को नमस्कार करके यथामति विचित्र उपाख्यान लिख रहा हूँ।

पहले मैं यह वर्णन करता हूँ कि यह विचित्र उपाख्यान सबसे पहले पृथ्वी पर कैसे उतरा। वह शिशिर ऋतु की सन्ध्या थी , तुषार पड रहा था, हड्डियों को छेद डालने वाली ठण्डी हवा बह रही थी, ऐसे में नैमिषारण्य के सँकरे प्राङ्गण में शौनक आदि अस्सी हजार ऋषि किसी तरह दब कर सूत जी के सम्मुख बैठे। वे ठण्ड से काँप रहे थे, देश की दुर्दशा से उनका हृदय व्यथित था। ऋषियों के समाज के मध्य जल रहे अग्निकुण्ड से वे किसी तरह अपनी ठण्ड दूर कर रहे थे तथा कालचक्र के परिवर्तन पर विमर्श कर रहे थे। शौनक ने ठण्ड से दाँतो की वीणा बजा रहे सूत से कहा – हे महर्षे ! यह बहुत ही विषम काल आ गया है। सर्वत्र विडम्बना ही मुँह फ़ैलाये खडी है। यह पृथ्वी सुरक्षा के उपाय होने पर भी असुरक्षित सी, क्षरित हो रही सी प्रतीत हो रही है। भगवान् बुद्ध की विहारभूमि लुटेरों की विहारभूमि बन गयी है। सीमा पर षडयन्त्र करने में निपुण लोगों के द्वारा शारदा देश (कश्मीर) कुचला जा रहा है। मगध में गधे घूम रहे हैं। सिंह सियार बन गये हैं। गाण्डीव छोड कर अर्जुन अनमना हो रहा है। नृसिंह न तो नर रह गया न ही सिंह। इन्द्र का इन्द्रासन छिन गया है। वनों के वृक्ष उखाडे जा रहें हैं। पशु मारे जा रहे हैं स्वर्ग से नृत्त, गान और वाद्य छोड कर पृथ्वी पर उतरी हुई मेनका उनकी रक्षा का यत्न कर रही है। शीत , भीति और ईति से पीडित ये सभी मुनि उद्विग्न हैं। इसलिये आप कोई विचित्र उपाख्यान कहिये जिससे इस अवसाद का विनोद् हो।

व्याकरण – शिशिरसन्ध्यायाम्, शिशिरस्य सन्ध्या , तस्याम् , तत्पुरुष समास। महामतिः, महती मतिः यस्य स महामतिस्तस्य महामतेः, बहुब्रीहिसमास। ऋषिसमाजमध्ये, ऋषीणां समाजः , ऋषिसमाजस्तन्मध्ये , तत्पुरुष समास। शृगालायते = शृगाल इव आचरति। अपहतगाण्डीवः , अपहतः परित्यक्तः गाण्डीवः येन सः, बहुब्रीहि समास। विच्छिन्नेन्द्रशासनः , विच्छिन्नः इन्द्रशासनं यस्य सः , बहुब्रीहि समास।

कथा का प्रारम्भ

सूत उवाच – मुनयः ! सादो न कार्यः। न च खेदो मनस्सु धार्यः। श्रूयतां विचित्रमेव किमप्युपाख्यानं कथयामि। अस्ति परितो हस्तिनापुरं हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये विचित्र एव कश्चन देशः। कोऽसौ देशः , किं वाऽस्य स्वरूपमितीदम्प्रथमतया वक्तुं न पार्यते। मध्ये च तस्य देशस्य वर्तते निविडं वनम्। वने च बभूव गहना कापि गुहा। गुहायां न्यवसज्जरद्गवो नाम कश्चन भल्लूकः। हस्तिनापुरवासिनस्तं भल्लूकमधिकृत्य प्रायशो न किमपि विदुः। तथापि तास्ताः कथास्ते तमाश्रित्य कथयाम्बभूवुः। कर्णाकर्णिकया किंवदन्त्यो भल्लूकं तमाश्रित्यास्यन्दन्त। कदासौ भल्लूकस्तत्र गुहायामागतः , कुत आगतः, कथं तत्र वसतिमकल्पयदिति न कोऽप्यजानात्। अतीताः पञ्चसहस्रमब्दाः वने

तस्मिन् वसतस्तस्येति केचिदाहुः। अन्ये सनातनमतावलम्बिनः पञ्चसहस्रवर्षमस्यायुरिति न विषेहिरे। सृष्टेरस्याः प्रागेवाऽसौ गुहायामनादिनिधनो निवसतीति ते प्रत्यपादयन्।

अत्र नास्तिकधुर्योपाध्यायाः पप्रच्छुः – " यदा सृष्टिरेव नासीत् तर्हि गुहा कथमयातेति"। अपरे – अरे पञ्चवर्षकल्पो बाल एवाऽसाविति प्रोचुः। कदाचित् कश्चन् साहसिकः – ननु दृष्टो मया नद्या अपरे तीरे विचरन् जरद्गव इति साटोपमघोषयत्। इति यावन्ति मुखानि तावत्यो वार्तास्तं जरद्गवमधिकृत्य प्रचेलुः। केचित्तु – अरे अतिततरां छविल्लोऽसौ भल्लूको दिनावसाने समायाति प्रच्छन्नं दर्शयति च कामकमनीयं स्वं वपुर्ललनाभ्यश्चिरण्टीभ्यः। न कस्या अपि शीलं सुरक्षितं वर्तते सम्प्रतीति समामनन्ति स्म। यदा काचन मुग्धा नवयुवती गृहात् पलायिता, नाज्ञायत क्व गता, तदा नूनं जरद्गवेन तेन सा नीतेति जना मेनिरे। पश्चान् मोहमय्याख्यायां नगर्यां लब्धायां तस्यां – अरे मधुकरवृत्तिरसौ चूषयित्वा तस्या लावण्यरसं तां तत्र न्यक्षिपत् मोहमय्यामिति ते न्यगदुः।

शब्दार्थ – सादः = दुख, हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये = हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य, निविडम् = घना , गुहा = गुफा , कर्णाकर्णिकया = कानो कान, अनादिनिधनः = आदि और अन्त रहित , नास्तिकधुर्यः = नास्तिक शिरोमणि , छविल्लः = छवीला, लावण्यरसः = सौन्दर्यरस , मोहमयी = मुम्बई , मधुकरवृत्तिः =भ्रमर वृत्ति।

अनुवाद – सूत जी ने कहा – हे मुनिजन ! दुख मत करिये। मन में कोई खेद मत आने दीजिये। सुनिये, मैं कोई विचित्र उपाख्यान कहने जा रहा हूँ। हस्तिनापुर के चारो ओर हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य कोई विचित्र ही देश है। यह कौन सा देश है और इसका क्या स्वरूप है, यह सब इदम्प्रथमतया नहीं कहा जा सकता। उस देश के मध्य एक सघन वन है तथा वन में कोई गम्भीर गुफा है। उस गुफा में कोई जरद्गव नाम का भालू रहता था। हस्तिनापुर के लोग उस भालू के विषय में प्रायः कुछ नहीं जानते थे फिर भी वे उसके विषय में अनेक प्रकार की कथायें कहते थे। कर्णपरम्परा से उस भालू के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ फैल गयीं। यह भालू कब उस गुफा में आया, कहाँ से आया, कैसे वहाँ रहने लगा, यह सब कोई नहीं जानता था। कुछ लोग कहते थे दृ इसे यहाँ रहते पाँच हजार साल बीत गये। सनातन धर्मावलम्बी यह मानते थे कि उस भालू की उम्र पाँच हजार साल से कम नहीं है। उनका मानना था कि आदि और अन्त रहित वह सृष्टि के पहले से ही उस गुफा में रह रहा है। कतिपय नास्तिक शिरोमणि उनसे यह पूछते थे दृ जब सृष्टि ही नहीं थी तब वह गुफा कहाँ से आयी। दूसरे यह कहते थे – अरे यह तो पाँच वर्ष का बालक ही है। कभी किसी साहसी ने यह तक कह डाला कि मैने नदी के दूसरे पार विचरण कर रहे जरद्गव को देखा है। इस प्रकार जितने मुख उतनी बातें उस जरद्गव को लेकर फैल गयीं। कुछ लोगों ने कहा दृ वह भालू बहुत छवीला है, वह सूर्य अस्त हो जाने के बाद छिप कर आता है और कामदेव के समान सुन्दर अपना शरीर युवतियों तथा किशोरियों को दिखाता है। इस समय किसी का भी शील सुरक्षित नहीं है। जब भी कोई मुग्धा युवती घर से भगी, यह पता नहीं चला कि वह कहाँ गयी। उस समय लोग यही मानने लगे कि उसे जरद्गव उठा ले गया। बाद में जब वह मोहमयी मुम्बई नगरी में मिली तो लोगो ने कहा – अरे, भ्रमरवृत्ति यह जरद्गव उसके सौन्दर्यरस को चूष कर उसे मुम्बई में फेक दिया।

व्याकरण – हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये = हिमवान् च विन्ध्यश्चेति हिमवद्विन्ध्यौ, तयोः मध्ये , द्वन्द्वगर्भ तत्पुरुष। हस्तिनापुरवासिनः, हस्तिनापुरस्य वासिनः, तत्पुरुष समास। नास्तिकधुर्यः, नास्तिकेषु धुर्यः अग्रगण्यः, तत्पुरुष समास। कामकमनीयः काम इव

कमनीयः सुन्दरः, कर्मधारय ,

दिनावसाने, दिनस्य अवसाने, तत्पुरुषसमास।

जरद्गव की खोज के लिये मिनी का आगमन –

अस्मिन्नेव समये मिनीनाम्नी फ्रांसदेशीया काचन कन्या हस्तिनापुरमवततार। सा च व्युत्पन्ना बहुविधभारतीयभाषासु, अबाह्या इतिहासपुराणादिषु, अधिगतशास्त्रा चासीत्। जरद्गवान्वेषणमेव तस्या हस्तिनापुरागमनप्रयोजनमासीत्। कालिन्द्या अपरे तीरे वर्तते महद्वनम्, तत्र विचित्रो देशः, तत्रैव चास्ति जरद्गवस्य वसतिरिति विज्ञाय सा कालिन्दीतीरमाजगाम। न कोऽपि नाविकस्तामपरतीरं नेतुमभवद् बद्धपरिकरः। देवि ! अशरणमतीवसङ्कटकरणं भयवितरणं वर्तते तद्वनम–। ये तत्र गतास्ते तत्रैव लयं गताः, अतः कथमेकाकिनीं तत्र नयामोऽत्रभवतीम् , विद्यते तत्र कश्चनातिभयङ्करो भल्लूक इति नाविका अवदिषुः। कथञ्चित् तेष्वन्यतमो दशगुणितेन भाटकेन तामपरतीरं प्रापयितुमुद्युक्तोऽभवत्।

शब्दार्थ – फ्रांसदेशीया = फ्राँस देश में रहने वाली, अवततार = उतरी, बहुविधभारतीयभाषासु = अनेक भारतीय भाषाओं में ,अधिगतशास्त्रा = शास्त्रों में निपुण, कालिन्द्याः = यमुना के , कालिन्दीतीरम् = यमुना के किनारे , बद्धपरिकरः = तैयार , अशरणम् = शरण रहित, लयम् = विनाश , तेष्वन्यतमः = उनमें से कोई एक, दशगुणितेन = दशगुना अधिक. अपरतीरम् = दूसरे पार।

अनुवाद – इसी समय मिनी नामक कोई फ्रांस देश की कन्या हस्तिनापुर पहुँची। वह अनेक भारतीय भाषाओं को जानती थी। इतिहास , पुराण आदि में भी निपुण थी शास्त्रों में प्रवीण थी। जरद्गव का अन्वेषण ही उसके हस्तिनापुर आने का प्रयोजन था। यमुना के दूसरे पार जो महान् वन है, वहीं विचित्र देश है और वहीं जरद्गव का निवास स्थान है, यह जानकर वह यमुना के तट पर आयी। कोई भी नाविक उसे दूसरे पार ले जाने को तैयार नहीं था। देवि! यह वन शरणरहित है, इसमें बडे बडे संकट हैं तथा भयान्वित करने वाला है। जो वहाँ गये वे वहीं नष्ट हो गये। इसलिये आपको अकेली हम वहाँ कैसे ले जायें। वहाँ कोई भयंकर भालू रहता है, ऐसा नाविकों ने उससे कहा। किसी तरह उन्हीं में से एक नाविक दशगुना अधिक भाडा लेकर उसे पार उतारने को तैयार हुआ।

व्याकरण –' अधिगतशास्त्रा , अधिगतं शास्त्रं यया सा , बहुब्रीहि, बद्धपरिकरः , बद्धः परिकरः येन सः, बहुब्रीहि, जरद्गवान्वेषणम् जरद्गवस्य अन्वेषणम्, तत्पुरुष, कालिन्दीतीरम्. कालिन्द्याः तीरम्. तत्पुरुष।

मिनी का अरण्य में पहुँचना – (द्वितीयोऽध्यायः)

विचित्रैवासीदियं मिनीर्नाम कन्या। वस्तुतस्तु तस्या विचित्रमाचरणमेवाऽत्र विचित्रोपाख्यानमित्यस्याः संज्ञाया हेतुः। परावृत्ते नावमादाय नाविके स्वकिरणजालं सङ्कोचयति सूर्यधीवरे गतवति च पश्चिमाम्बुधिमवगाहनाय सा कन्या तस्मात् पराङ्मुखी प्राचलत्। शनैः शनैः सघनतामियाय वनम्। उत्थिताः शिवानामशिवास्तीव्रा रवा कर्णकुहरान् दिग्वलयांश्च विदारयन्तः। मध्ये मध्ये च झिल्लीनां झङ्कृतिरश्रूयत। क्वचिच्च सहसा आक्षितिजं प्रससार सुदूरादपि वनप्रान्तात् प्रसृतं केसरिणः कस्यचिद् गर्जनम्। शबलितायां तमसः कुज्झटिकायां पीतकपिशः कश्चन द्वीपी कृष्णमेघपटले सौदामिनीनिकषरेखामिव रचयन् द्रुतं दुद्राव। सा कन्या विगलति पश्चिमसन्ध्यारागे,

करदीपिकाप्रकाशे मार्गमन्वेषयन्ती कथञ्चिदग्रे ससार।

शब्दार्थ – परावृत्ते = लौट जाने पर, स्वकिरणजालम् = अपने किरणसमूह को, पश्चिमाम्बुधिम् = पश्चिम दिशारूपी समुद्र , शिवानाम् = सियारों के , अशिवाः = अशुभ , दिग्वलयान् = दिशाओं के वलय को , वनप्रान्तात् = वनप्रान्त से, शबलितायाम् = चितकबरा, कुज्झटिकायाम् = कुहासा, द्वीपी = तेंदुआ, सौदामिनीनिकषरेखा = बिजली के कसौटी की रेखा, करदीपिकाप्रकाशे = टार्च के प्रकाश में।

अनुवाद – मिनी नामक यह कन्या विचित्र ही थी। वास्तव में उसका विचित्र आचरण के कारण ही इस उपाख्यान का विचित्र उपाख्यान नाम रखा गया है। नाविक के नाव लेकर लौट जाने के बाद, सूर्यधीवर के अपने किरणसमूह को समेट कर पश्चिम समुद्र में अवगाहन के लिये चले जाने पर वह कन्या पीछे मुख करके चल पडी। धीरे धीरे वन सघन होने लगा। कर्णकुहरों तथा दिग्वलयों को विदारित करती हुई सियारों की अशुभ और तीव्र ध्वनियाँ उठने लगीं। बीच बीच में झिल्लियों की झंकिति भी सुनायी दे रही थी। सहसा कहीं सुदूर वनप्रान्त से फैलती हुई किसी सिंह की गर्जना आकाश तक फैल गयी। आँधेरे के चितकबरे कुहासे में पीला और कपिश कोई तेंदुआ काले बादलों के बीच बिजलीरूपी कसौटी की रेखा सा रचता हुआ शीघ्रता से भागा। पश्चिम दिशा की सन्ध्याकालीन लालिमा विगलित हो रही थी और वह कन्या मिनी टार्च के प्रकाश के सहारे मार्ग खोजती हुयी आगे बढ रही थी।

व्याकरण – स्वकिरणजालम् , किरणानां जालं, किरणजालम् , स्वस्य किरणजालम्, तत्पुरुष, दिग्वलयः ,दिशां वलयस्तान्, तत्पुरुष, कृष्णमेघपटलम् , कृष्णमेघानां पटलम्, तत्पुरुष।

लुइस तथा शीबा का मिलन तथा विवाह (तृतीय अध्याय)

अस्ति निखिलभुवनमण्डलमण्डनायमाना चाकचक्येन चमत्कुर्वती जगत् सकलकलानिधानभूता सहस्राब्दवृद्धाऽपि नववधूरिव सदा मनोहरन्ती सौन्दर्यसारसमुदायमयैः पदार्थैरिव विनिर्मिता फ्रांसदेशेषु पेरिसाख्या नगरी। तत्र जार्जलुइसनामा कश्चन सज्जन उवास। बाल्यादेवाऽसौ साहित्ये सुकुमारवस्तुनि कर्कशे च तर्के समं रेमे। अध्ययनव्याधिना ग्रस्तः चिन्तनव्यसनप्रसक्तः मननमेव सेवां मन्वानोऽसौ दुश्चिकित्स्य इति परित्यक्तो मित्रैः। पितरौ चास्य कैशोर्य एव दिवङ्गतौ। स कदाचिन्निर्माणीषु भृतिं कुर्वाणः अल्पाहारगृहेषु पात्राणि मार्जयन् वा स्वाध्यायक्रमं नाऽजहत्}। 1930 तमे खिस्ताब्देऽसौ पेरिसविश्वविद्यालयस्य स्नातकः सञ्जातः।

शब्दार्थ – निखिलभुवनमण्डलमण्डनायमाना = समस्त भूमण्डल के अलंकार सी , सकलकलानिधानभूता = समस्त कलाओं की खान, सस्राब्दवृद्धा = हजार वर्ष पुरानी , सौन्दर्यसारसमुदायमयैः = सुन्दरता के सार के समूहों से युक्त, अध्ययनव्याधिना = अध्ययनरोग से, चिन्तनव्यसनप्रसक्तः = चिन्तन रूपी व्यसन में संलग्न, निर्माणी = फैक्ट्री।

अनुवाद – फ्रांस देश में पेरिस नाम की नगरी है। यह नगरी समस्त भूमण्डल की अलंकार सी सुशोभित होती है, सम्पूर्ण संसार को अपने चाकचक्य से चमत्कृत सा करती है , समस्त कलाओं की खान है , एक हजार साल पुरानी होकर भी नववधू के समान मनोहारिणी है, वह सौन्दर्य के सारों के समुदायों से युक्त पदार्थों से बनी लगती है। उस नगरी में जार्ज लुइस नाम का कोई सज्जन रहता था। बाल्यकाल्य से ही इसका मन सुकुमार वस्तुमय साहित्य तथा कर्कश शास्त्रों मे समान रूप से रमता था।

उसे अध्ययन करने का रोग था, अहर्निश वह चिन्तन में लगा रहता था , वह मनन को ही सेवा मानता था, इसलिये मित्रों ने उसे लाइलाज मान कर उसका साथ छोड दिया। यह जब किशोर था, तभी इसके माता पिता दिवंगत हो गये। वह कभी फैक्ट्रियों में काम करता तो कभी अल्पाहारगृहों में बर्तन धोता किन्तु अपने अध्ययनक्रम को नही छोडा। 1930 ईस्वीय में लुइस ने पेरिस विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की।

व्याकरण – निखिलभुवनमण्डलमण्डनायमाना = निखिलभुवनमण्डले मण्डनायमाना , तत्पुरुष , सकलकलानिधानभूता = सकलकलानां निधानभूता, तत्पुरुष।

आसीत् तदानीं पेरिसनगरे सार्त्रनामा कश्चन मुनिः। ज्ञानप्राप्त्यर्थं लुइसः कञ्चन कालं तस्य सकाशमप्यवर्तत। अस्तित्वं प्रथममागतम् , चेतना च पश्चात् प्रारूढेत्यासीत् तस्य मुनेर्मतिरू। कृतेऽपि शास्त्रार्थे न सार्त्रमुनेर्विचारपद्धतिर्लुइसस्य चेतस्य श्लिष्यदित्यसौ परित्यज्य तत्सङ्गतिं पूर्वाभिमुखः प्राचलत्। वित्ताभावाद् विहाय वायुयानमार्गं जलमार्गेणाऽसौ गन्तुं प्रवृत्तः। चतुर्विंशतिवर्षीयो लुइसो यौवनेन देहरेखासु विन्यस्तलसच्छायः मदनेन तूलिकयोन्मीलितचित्राकृतिः अतिरमणीयोऽभूत्। जलयाने युवत्यस्तद्रूपं सतृष्णमिव पिबन्त्यस्तमवलोकयामासुः। जलयानं शनैः शनैः अग्रे ससार।

शब्दार्थ – पेरिसनगरे = पेरिस नगर में , सार्त्रनामा = सार्त्र नामक , सकाशम् = पास में, अस्तित्वम् = सत्ता , चेतसि = बुद्धि में , पूर्वाभिमुखः = पूर्व दिशा की ओर , वित्ताभावाद् = धन के अभाव में , विन्यस्तलसच्छायः = कान्ति से परिपूर्ण, सतृष्णमिव = प्यासे की तरह, ससार = चला।

अनुवाद – उस समय पेरिस नगर में सार्त्र नामक कोई मुनि निवास करते थे। ज्ञानप्राप्ति के लिये लुइस कुछ समय तक उनके पास भी रहा। " पहले सत्ता आयी, बाद में चेतना प्ररूढ हुई" यह उस मुनि का मानना था। शास्त्रार्थ करने के बाद भी सार्त्र मुनि की विचार पद्धति लुइस के मन में नहीं बैठी, इसलिये उसने लुइस ने उनकी संगति छोडकर पूर्व की ओर अभिमुख होकर चल पडा। धन का अभाव होने के कारण वह वायुयान का मार्ग छोड कर जलमार्ग चलने को प्रवृत्त हुआ। चौबीस वर्षीय लुइस की देहरेखाओं में यौवन के कारण सुन्दरता विन्यस्त थी। वह कामदेव के द्वारा कूँची से उभारी गयी चित्राकृति के समान अत्यधिक सुन्दर लग रहा था। जलयान में युवतियाँ उसके रूप को प्यासी की तरह पीती हुयी उसे देख रही थीं। वह जलयान धीरे धीरे आगे बढ रह था।

व्याकरण – शास्त्रार्थः , शास्त्रस्य अर्थः शास्त्रार्थः , तत्पुरुष, तत्सङ्गतिः , तस्य सङ्गतिः , तत्पुरुष, वित्ताभावाद्, वित्तस्य अभावः, तस्मात्, तत्पुरुष।

लुइसो जलयानस्य पृष्ठालिन्दे डेकसंज्ञके समुपविष्टः सायन्तनकालेऽस्तमुपयान्तं भास्करं निर्वर्णयति स्म। सागरजले निपतिता भास्करकरा लहरीषु रक्तच्छविततं विचित्रं चित्रमरचयन्। सहसैव समुत्थिता वात्या। उपरि केचन काष्ठफलका विनिहता आसन्। लुइसस्तथा ध्यानस्थो यन्नासौ वात्यावेगं विवेद। अरे दृ अरे काष्ठफलकं पतति इति समुत्थितः स्वरः। समं च काचन ललना हस्तमाकृष्य तं स्थानात् तस्माद् यावदपसारयति, तावत् पपात तत्रैव काष्ठफलकम्। यदि क्षणांशमात्रेण सा ललना व्यलम्बयिष्यत, लुइसस्य प्राणाः प्रायास्यन्। "अतीवाऽनुगृहीतोऽस्मि। भवत्या मम रक्षा विहिता " इति स कथमपि उत्तीर्याकस्मिकाघातं निजगाद।

शब्दार्थ – सायन्तनकाले = सायंकाल, भास्करकराः = सूर्य की किरणें, रक्तच्छविततम्

= लालिमा में फली हुयी, वात्या = आँधी, ललना = स्त्री, क्षणांशमात्रेण = क्षण भर में।

अनुवाद – लुइस जलयान के पीछे डेक में बैठा हुआ सायंकाल अस्ताचल को जा रहे सूर्य को देख रहा था। समुद्र के जल में पड रहीं सूर्य की किरणें लहरों में लालिमा में फैले विचित्र चित्र का निर्माण कर रहीं थीं। सहसा आँधी आगयी। ऊपर कुछ काष्ठफलक रखे थे। लुइस इतना ध्यानमग्न था कि वह आँधी के वेग को नहीं जान पाया। अरे दृ अरे काष्ठफलक गिर रहा है, ऐसा स्वर उठा। इस स्वर के साथ ही किसी सुन्दर स्त्री ने लुइस का हाथ खीच कर उसे जैसे ही उस जगह से हटाया वैसे ही वहीं काष्ठफलक गिर गया। यदि वह ललना क्षण भर भी विलम्ब करती तो लुइस के प्राण चले जाते। लुइस आकस्मिक आघात से किसी तरह उबरता हुआ बोला – " मै आपका बहुत आभरी हूँ। आपने मेरी रक्षा की है"।

व्याकरण – सागरजले, सागरस्य जले, तत्पुरुष, भास्करकराः, भास्करस्य कराः, तत्पुरुष।

सा आसीत् शीबा। सुमातृद्वीपवासिनी। सम्प्रति सुमातृद्वीपं थाईदेशान्तर्वर्ति वर्तते। शीबा डयनप्रसारनगरे एकस्मिन् विद्यालये नृत्यं शिक्षयति। साँस्कृतिकविनिमयकार्यक्रमे सा फ्राँसदेशं नृत्यप्रदर्शनाय गतवती। शीबया वार्तां कुर्वन् लुइसः कालस्य गतिं विसस्मार। तस्याः पेरिसयात्रायाः संस्मरणेष्वसौ स्वकीयामेव जन्मभुवं नवालोके ददर्श। तस्याः थाईदेशविषयिणी वार्ताः श्रावं स्वप्नलोके विचचार। अधिपारावारमपारमनयोः प्रेम वृद्धिमगच्छत्। उपरि नभः अधश्च सागरमवलोकयन्तावुभौ नभ इव सागर इवानन्त्यं प्रेमसुखस्याऽन्वभवताम्।

शब्दार्थ – सुमातृद्वीपवासिनी = सुमात्रा द्वीप की रहने वाली। नृत्यप्रदर्शनाय = नृत्य प्रदर्शन के लिये , जन्मभुवम् = जन्मभूमि को, अधिपारावारम् = समुद्र के मध्य , अपार = अनन्त, नभः = आकाश।

अनुवाद – लुइस को बचाने वाली उस सुन्दरी का नाम शीबा था। वह सुमात्रा द्वीप की निवासिनी थी। इस समय सुमात्रा द्वीप थाईदेश के अन्तर्गत है। शीबा डेनपसार नगर किसी विद्यालय में नृत्य सिखाती थी। साँस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम में वह नृत्य प्रदर्शन करने के लिये फ्राँस गयी थी। शीबा से वार्तालाप करता हुआ लुइस काल की गति को भूल गया। शीबा की पेरिसयात्रा के संस्मरणों में वह अपनी ही जन्मभूमि को नये आलोक में देखने लगा। उसकी थाईदेश विषयक बातों को सुनकर लुइस स्वप्नलोक में विचरण करने लगा। समुद्र के मध्य इन दोनो का अपार प्रेम वृद्धि को प्राप्त हुआ। ऊपर आकाश तथा नीचे सागर को देखते हुये दोनो आकाश तथा समुद्र के समान प्रेमसुख के आनन्त्य का अनुभव किया।

व्याकरण – सुमातृद्वीपवासिनी, सुमातृद्वीपस्य वासिनी, तत्पुरुष, अधिपारावारम् , पारावारे इति अधिपारावारम्, अव्ययीभाव, अवलोकयन्तावुभौ = अवलोकयन्तौ + उभौ अयादि सन्धि।

अतीतेषु कतिषुचिन् मासेषु कन्यामेकां प्रासूत शीबा। कन्याजन्मना आनन्दस्य कामपि काष्ठामविन्दल्लुइसः, परं शीबा न हर्षस्य लेशमप्यन्वभूत्। कन्यां प्रति दृढं स्निग्धं वीक्ष्य लुइसं साऽधिकतरमभ्यसूयत्। कन्या जन्मना आत्मानं निगडितामिव सा मेने। शीबा कस्मिंश्चिन्नर्तनागारे नर्तक्याः कर्म स्वीचकार। सा रात्रौ तत्राऽनृत्यत्, रात्रौ च गृहे असुप्यत्। एवं च व्यतीतास्तयोर्बहवो दिवसाः। गतेऽर्धरात्रे शीबा मदिराघूर्णितनयना नर्तनेन क्लान्ता गृहमायाति। लुइसो मिन्या सह तदा प्रसुप्तो भवति। प्रातरुत्थितोऽसौ

यदा स्वभार्यां विलोकयति, तदा निःश्वासैर्मदिरागन्धं विकिरन्ती शीबा सर्वथा क्षीबा प्रतिभाति। कलहं कुर्वाणयोस्तयोरनुदिनं सुखं न्यूनायितम्। दाम्पत्यं दुःस्वप्नायितम्। जीवनं दुःखार्णवायितम्, मनो दूनायितम्, दीनायितं दैनन्दिनं कर्म। अन्ततो लुइसो न्यायालये विवाहविच्छेदावावेदनं ददौ। विवाह उच्छिन्नः। न्ययालयनिर्णयानुसारं मिनीं तु शीबैव लेभे। ऋते मिनीं लुइसः सर्वथा विषण्णो निगीर्ण इव खेदेन , दग्ध इव मनस्तापेन शवमिव शरीरमुद्वहन् कालमतिवाहयामास। कथञ्चित् पेरिसविश्वविद्यालये शिष्यवृत्तिमसौ प्राप। पौरस्त्यविचारपद्धतीरधिकृत्य शोधकार्यमारब्धवान्। अस्मिन्नेव काले वीणानगरस्थप्राच्यविद्याशोधसंस्थानात् प्राकाश्यमानायां पत्रिकायां जरद्गवविषयकं शोधलेखमसावपठत्। तेन च जरद्गवविषयिणी अनुसंधित्सा तं प्रैरयत् भारतमागन्तुम् , कथञ्चिच्च यात्राया व्यवस्थां विधायाऽसौ भारतमाजगाम।

शब्दार्थ – नर्तनागारे = नृत्यालय ,डांस क्लब, मदिराघूर्णितनयना = शराब के नशे से घूम रही आँखों वाली , क्लान्ता = थकी हुयी, मदिरागन्धम् = मदिरा का गन्ध, क्षीबा = मतवाली, न्यूनायितम् = कम हो गया, विषण्णः = दुखी।

अनुवाद – विवाह के बाद कुछ महीनों के अनन्तर शीबा ने एक कन्या (मिनी) को जन्म दिया। कन्या के जन्म से लुइस अत्यधिक आनन्दित हुआ किन्तु शीबा आनन्द का लेश भी अनुभूत नहीं कर सकी। वह कन्या के प्रति लुइस के दृढ स्नेह को देख कर शीबा को लुइस पर असूया होने लगी। कन्या के जन्म से वह अपने को जकडी हुयी अनुभव कर रही थी। शीबा ने किसी डाँस क्लब में नर्तकी की नौकरी कर ली। वह रात में वहाँ नृत्य करती और दिन को घर में सोती थी। आधी रात बीतने के बाद शीबा घर आती। मदिरा पान से उसकी आँखे घूम रही होती, वह नृत्य के कारण थक चुकी होती थी। उस समय लुइस मिनी के साथ सो रहा होता था। सबेरे उठकर जब वह अपनी पत्नी को देखता तब श्वासों से मदिरा का गन्ध फैला रही शीबा मतवाली सी लगती।श् कलह करते हुये उन दोनो के जीवन में सुख दिन प्रतिदिन कम हो रहा था। दाम्पत्य दुःस्वप्न होगया था, जीवन दुःख के समुद्र सा हो गया था। मन सदा दुःखी रहने लगा था, उनका दैनिक कर्म बडी दीनता से होता था। अन्ततः लुइस ने विवाहविच्छेद के लिये न्यायालय में आवेदन कर दिया। उनका विवाह विच्छेद होगया। न्यायालय के निर्णय के अनुसार मिनी शीबा को ही मिली। मिनी के बिना लुइस सर्वथा दुःखी रहने लगा, खेद ने उसे निगल लिया, मनस्ताप ने उसे जला डाला ,वह शव के समान शरीर को ढोता हुआ समय बिताने लगा। किसी प्रकार लुइस को पेरिस विश्वविद्यालय में शिष्यवृत्ति प्राप्त हुई और वह पौरस्त्य विचारपद्धति को लेकर शोधकार्य करने लगा। इसी समय वीणानगर में स्थित प्राच्यविद्या –शोधसंस्थान से प्रकाशित पत्रिका में उसने जरद्गवविषयक शोधपत्र पढा। जरद्गव के विषय में अनुसंधान करने की इच्छा ने उसे भारत आने के लिये प्रेरित किया और किसी तरह यात्रा की व्यवस्था करके यह भारत आया।

व्याकरण – न्यूनायितम् = अन्यूनं न्यूनमभवदिति न्यूनायितम् . अदुःखार्णवः दुःखार्णवः अभवदिति दुःखार्णवायितम् , अदुःस्वप्नं दुःस्वप्नमभवदिति दुःस्वप्नायितम्।

किन्तु अधन्यतया स्वजीवनस्य, दुःखैकभागित्वाद्वा तदीय दैवविधानस्य भारतमागत्यासौ न स्वकीयमनुसन्धानं पूरयितुं प्राभवत्। अतीतेषु केषुचिद्दिनेष्वसौ फ्रांसदेशात् शीबायाः सन्देशमाप। " अहं मृत्युमुखे पतितास्मि। सत्वरमायाहीति " तत्र लिखितमासीत्।लुइसः संशयविकल्पदोलाधिरूढोऽन्ततो मिन्याः स्मारं स्मारं गमनं विनिर्णीय भारतात् परावृत्तः।मिनीं स्वगृहमानिनाय लुइसः। शीबां च प्रतिदिनं तदवसथं गत्वा गत्वा पर्यचरत्।

कतिपयमासानन्तरं शीबा कथाशेषतां गता।

सूत उवाच – मुनयः यथामति मया कथा प्रोक्ता। सेयं शीबालुइसयोः कन्या मिनीर्नाम या विचित्र देशे अटाट्यते। अस्या रक्ते मिश्रितं वर्तते पूर्वं च पश्चिमं च। इयमाधुनिकी वर्तते किन्तु परम्परामपि निध्यायति। इदानीं किं कथयामीति समादिश्यताम्।

शब्दार्थ – दुःखैकभागित्वात् = एकमात्र दुःख का भागी होने के कारण , मृत्युमुखे = मौत के मुख में , स्मारं स्मारम् = स्मरण करता हुआ , अटाट्यते = भटकना।

अनुवाद – किन्तु अपने जीवन की अधन्यता के कारण अथवा उसके भाग्यविधान के एकमात्र दुःख भागी होने के कारण भारत आकर भी वह अपना अनुसंधान पूर्ण नही कर सका। कुछ दिन बीतने के बाद इसे फ्राँस देश से शीबा का सन्देश मिला। " मैं मृत्यु के मुख में पडी हूँ। तुम शीघ्र आओ " ऐसा उसमें लिखा था। संशय और विकल्प के झूले में चढा लुइस मिनी को याद करता हुआ अन्ततः भारत से लौट गया। वह मिनी को अपने घर ले आया। शीबा के घर जा जा कर वह रोज उसकी सेवा करता रहा , कुछ महीनों बाद शीबा कथाशेष हो गयी।

सूत जी बोले दृ हे मुनिजन ! मैने यथामति कथा कह डाली। यह वही शीबा और लुइस की पुत्री मिनी है जो जरद्गव को खोजने के लिये विचित्रदेश में भटक रही है। इसके रक्त में पूर्व और पश्चिम दोनो मिले हैं। यह आधुनिक है किन्तु परम्परा को भी जानती है। अब मै कौन सी कथा कहूँ, आप लोग आदेश करें।

व्याकरण – अधन्यतया – अधन्यस्य भावः अधन्यता, तया , मृत्युमुखे = मरुत्योः मुखे मृत्युमुखे, तत्पुरुष, संशयविकल्पदोलाधिरूढः = संशयश्च विकल्पश्च संशयविकल्पौ तयोः दोला, तस्यामारूढः , द्वन्द्वगर्भतत्पुरुष।

मिनी और जरद्गव का मिलन – (चतुर्थोऽध्यायः)

मुनयः ऊचुः – भो महामते ! तस्मिन् वने एकाकिन्याः मिन्याः किमभूदिति ज्ञातुमिच्छामः।

सूत उवाच – मुनयः ! विचित्रैव वर्तते मिनीजरद्गवयोः कथा। यथा गगनं गगनाकारं सागरश्च सागरोप –मस्तथैवानयोश्चरित्रमनयोरिवैव वर्तते। एतादृशं गहनं विचित्रं च चरित्रं न केनापि कथितपूर्व, अतः सावधान –मेतच्छ्रवणीयम्।

एकदा मिनीः शिंशपातरोश्छायायां निषण्णा किमपि निध्यायति स्म। दूरतश्च द्वीपी गुल्मान्तरितस्तां निर्वर्णयतीति सा न वेद। शनैश्च सन्ध्या आवृणुते स्म वनमण्डलम्। अथ मन्दं गुर्रायमाणा सा आकृतिस्तामुपसर्पन्ती प्रतीयाय। मिनीश्च प्राणान् पणीकृत्याधावत्। मृगीवोदग्रप्लुतत्वात् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयान्ती कण्टकाकीर्णगुल्मेभ्यः सा सर्रायमाणा ससार। परन्त्वसौ नरभक्षी द्वीपी अपि न नाविन्दत तदीयां गतिम्। असौ द्रुततरमधावत। सम्प्राप्तश्चरमः क्षणः। स नरभक्षी उपरि तामनमयदात्मानम्। अग्रपादं तस्या वक्षसि निधाय स तां जिघ्रति स्म।

अनन्तरं कथं च किं च जाघटीति न तया ज्ञातम्। केनाऽपि सा वियत्युत्थापिता। नरभक्षी तु न तथा तामुत्थापयितुं शक्नोति। तर्हि केन सेत्थं समुत्थाप्यते ? अतिशयवेगात् पवनपदवीमारोपिता सा घूर्णमाना ऽमूर्च्छत्। निःसंज्ञा सा उपरि भूमिं केनापि कुत्रापि नीयमात्मानं नाऽन्वविदत। कियान् कालस्तस्या अपगतः शयानाया इति सा न विवेद। प्रत्यवस्थापितचेतना शनैरुन्मीलच्चक्षुः। काऽपि गुहा वर्तते दृ तस्यामहं शय्यायां वर्त इत्यजानात्। कस्यचिन्मुनेः कुटीयं स्यादिति मेने मिनीः। एकतः कोणे स्थापितं वर्तते

मृगचर्म , अपरत्र विद्यते सन्ध्यावन्दनार्थमाचमनी , आग्नेये कोणेऽवर्तताऽग्निस्थानम् , तत्र विनिर्मिता चुल्ली , धूमनिःसारणाय तदुपरि गवाक्षजालमपि विहितमासीत्। उपरि चुल्लीं भित्तयः धूमेन स्पृष्टा कृष्णमुख्यो बभूवुः पार्श्वे तत्रैव स्थापितमासीत् मधुसम्भृतं मालूरपात्रं मृत्तिकाशरावे चाऽम्रफलानि।

शब्दार्थ – द्वीपी – तेंदुआ , गुल्मान्तरितः = झाडियों में छिपा हुआ , स्तोकम् = थोडा, द्रुततरम् = अति वेग से , वियति = आकाश में। धूमनिःसरणाय = धुआ निकलने के लिये , कृष्णमुख्यः = काले रंग की , मृत्तिकाशरावे = मिट्टी के सकोरे में। मालूरपात्रम् = बेल का पात्र।

अनुवाद – मुनियों ने कहा – हे महामते ! उस वन में अकेली मिनी का क्या हुआ, हम यह जानना चाहते हैं।

सूत जी बोले – मुनिजन ! मिनी और जरद्गव की कथा अत्यन्त विचित्र है। जैसे आकाश आकाश के ही आकार का है सागर सागर जैसा ही है उसीप्रकार मिनी और जरद्गव का चरित्र इन्हीं के समान है। ऐसा गहन और विचित्र चरित्र किसी ने पहले नहीं कहा , इसलिये सावधानीपूर्वक सुनो। एकबार मिनी शीशम के पेड की छाया में बैठी हुई कुछ सोच रही थी तथा झाडियों की आड में छिपा तेन्दुआ उसे दूर से देख रहा था, किन्तु वह यह नहीं जान पायी। धीरे धीरे सन्ध्या वनम्ण्डल को घेर रही थी धीरे धीरे गुर्राती हुई वह आकृति उसके पास आती हुई प्रतीत हुई। मिनी अपने प्राणों की बाजी लगाकर दौड पडी। वह मृगी की तरह ऊपर कूदती हुई आकाश में अधिक और पृथ्वी पर कम ही चलती थी।वह काँटो से भरी हुई झाडियों से तेजी से भाग रही थी परन्तु यह नरभक्षी तेंदुआ भी उसकी गति को नहीं समझ पाया। यह उसके पीछे और भी तेज दौड रहा था। चरम क्षण प्राप्त हुआ। वह नरभक्षी मिनी को पकड कर उसके ऊपर झुका। अपने अगले पैर को उसके वक्षःस्थल पर रखकर वह मिनी को सूँघ रहा था। तदनन्तर क्या हुआ, वह सब मिनी भी नहीं जान पायी। किसी ने उसे आकाश में उठा लिया। नरभक्षी तो उसे उसप्रकार उठा नहीं सकता था तो उसे इसप्रकार कौन उठा रहा है ? अतिशय वेग से हवा में टागी गयी वह चकराती हुयी मूर्च्छित हो गयी। वह बेहोश थी, इसलिये उसे कौन कहाँ लिये जा रहा है, यह वह नहीं जान पायी। वह कितने समय से यहाँ पडी है, यह भी नहीं जान पायी। होश आने पर उसकी आँखें खुलीं। कोई गुफा थी दृ उसमें मैं शैया में पडी हूँ, यह मिनी जान पायी। मिनी ने यह माना कि यह किसी मुनि की कुटी हो सकती है। एक कोने में मृगचर्म रखा था दूसरी ओर सन्ध्यावन्दन की आचमनी रखी थी, अग्निकोण में अग्निस्थान था वहीं पर एक चूल्हा बना था, उसके ऊपर धूम निकलने के लिये एक गवाक्ष भी बना था। चूल्हे के ऊपर की दीवारें धुयें से काली हो गयी थीं। वहीं पास में बेल का एक पात्र रखा था जिसमें शहद थी तथा मिट्टी के सकोरे में आम के फल रखे थे।

व्याकरण – गुल्मान्तरितः – गुल्मेषु अन्तरितः, तत्पुरुष, कण्टकाकीर्णगुल्मेभ्यः , कण्टकाकीर्णं च तत् गुल्मम्, तानि, तेभ्यः , धूमनिस्सारणाय धूमस्य निस्सारणाय , मृत्तिकाशरावे , मृत्तिकाशरावे मृत्तिकायाः शरावे, मधुसम्भृतम्, मधुना सम्भृतम्।

मिनीजरद्गवयोः मेलनं जरद्गवेन तद्विवादश्च –

मुनिश्चाऽत्र वसति कश्चन। स यावन्नायाति तावदेवेतोऽपसरामीति निश्चित्य सा शय्याममुञ्चत् , उत्थितमात्रा च गुहाद्वारि ददर्श कञ्चन जटिलम्।

सूत उवाच – मुनयः ! कलियुगस्य प्रथमचरणे ख्रिस्तस्य विंशशतके वा समारब्धं मिनीजरद्गवयोः साहचर्यम्। निखिलेऽपि भूमण्डले एतादृशस्यासमञ्जससाहचर्यस्य चर्चा प्रसृता। विचित्रैव आसीत् जरद्गवस्य प्रेमपद्धतिः। स तां विभिन्नैर्नामभिराह्वयत्।क्वचिद् गौराङ्गीं क्वचिद् रक्तमुखीं, क्वचिच्च परिहासपरायणतया वानरीं कलहप्रियां कालीं करालां निर्णतोदरीमामृष्टपार्श्वां चाऽभाणीत् ताम्।

– "मिनीरिति नाम न शोभते तवेदानीम्" – एकदा जरद्गवस्तामाह।

– "अहो नु खलु भोः। अपीदानीं त्वं मदीयं नामाऽपि परिवर्तयिष्यसि ?

– अहं त्वां मृणालिनीति कथयिष्यामि। त्वमसि मृणालिनी कोमला च भङ्गुरा च।

श्रुत्वोच्चौर्हसन्ती मृणालिनी उवाच – कालेनैव ज्ञास्यसि क आवयोर्मध्ये भङ्गुरः कतमश्च स्थानुः।

समग्रेऽपि विचित्रदेशे मिन्याः मृणालिनीति नवीनं नाम प्रचारमाप। शनैः शनैः सा समीपवर्तिग्रामेषु लोकप्रियतां जगाम। जनास्तां कौतुकसम्भिन्नया श्रद्धया व्यलोकयन् ते तां देवीति मेनिरे। अथ मृणालिन्याः कृते जनैर्नवीनमावासगृहं विनिर्मायि। परं जरद्गवस्तत्र गन्तुं न वाञ्छति। आवासपरिवर्तनमधिकृत्योभयोर्विवादः समजनि। मृणालिनी नवीनावासं जगाम। जरद्गवस्तदनु क्व लीन इति न ज्ञायते।

शब्दार्थ – अपसरामि = भाग जाती हूँ। उत्थितमात्रा = उठते ही। गुहाद्वारि = गुफा के दरवाजे पर। साहचर्यम् = साथ। प्रेमपद्धति = प्रेम करने की रीति। आवासगृहम् = निवास का घर। उभयोः = मिनी और जरद्गव के मध्य।

अनुवाद – यहाँ कोई मुनि निवास करता है। मैं उसके आने से पहले यहाँ से भाग जाती हूँ। ऐसा सोचकर वह जैसे ही चारपायी से उठी , उठते ही उसने गुफा के द्वार पर किसी जटाधारी को देखा। सूत जी ने कहा दृ मुनिजन ! कलियुग के प्रथम चरण या यीस्वी के बीसवीं शताब्दी में मिनी और जरद्गव का साहचर्य प्रारम्भ हुआ। सम्पूर्ण भूमण्डल में इस असमंजस साहचर्य चर्चा फैल गयी। जरद्गव की प्रेमपद्धति विचित्र ही थी। वह मिनी को अनेक नाम से बुलाता था।कभी वह उसे विदेशिनी कहता , कभी गौराङ्गी, कभी रक्तमुखी और कभी कभी मजाक मजाक में उसे वानरी और कलहप्रिया, काली , कराला, निर्णतोदरी, आमृष्टपार्श्वा भी कहता था।

एकबार जरद्गव ने मिनी से कहा – अब तुम्हारा मिनी यह नाम अच्छा नहीं लगता।

– अच्छा तो अब तुम मेरा नाम भी बदलोगे ?

– मै तुम्हें मृणालिनी कहूँगा। तुम कोमल और भङ्गुर मृणालिनी हो।

यह सुन कर जोर से हँसती हुयी मृणालिनी बोली दृ कुछ समय में जान जाओगे कि हम दोनो में कौन भंगुर है तथा कौन स्थायी है।

सम्पूर्ण विचित्र देश में मिनी का मृणालिनी इस नये नाम का नाम प्रचार हो गया। धीरे धीरे वह पास के गाँवों में लोकप्रिय हो गयी। लोग उसे कौतुक भरी श्रद्धा से देखते थे तथा उसे देवी मानते थे। लोगों ने मृणालिनी के लिये नवीन घर बनवा दिया परन्तु जरद्गव वहाँ जाने को तैयार नहीं हुआ। आवास परिवर्तन को लेकर दोनो में विवाद हो गया। मृणालिनी नवीन आवास में चली गयी किन्तु जरद्गव कहाँ लीन हो गया , यह कोई नहीं जानता।

व्याकरण – गुहाद्वारि , गुहायाः द्वारि, तत्पुरुष , प्रेमपद्धतिः , प्रेम्णः पद्धतिः , तत्पुरुष, कालेनैव , कालेन + एव , वृद्धि संधि।

मृणालिन्या जरद्गवान्वेषणं तत्प्राप्तिश्च –

सूत उवाच – मुनयः ! एवमेवातीतो ब्रह्मणो निमेषमात्रः कालः। एतावता कालेन नैका मनुजसन्ततयो गताश्चागतश्च। मृणालिन्या बहवो भक्ता इदानीमासन्। ते सदैव तां परिवार्य गच्छन्ति स्म। मृणालिन्या मन उत्कायते स्म जरद्गवेन मिलितुम्।परन्तु इयता जनसमुदायेन परिवारिता सा न तमन्वेष्टुं शशाक। जरद्गवोऽप्यदर्शनं गत इति मृणालिनीदानीं चिन्तापरा आस्ते। समग्रेऽपि देशे यत्रावलोक्यतां तत्रैवेयं वार्ता यज्जरद्गवः क्व गत इति। जरद्गवविरहिता मृणालिनी अपि ग्लायति। सा चिन्तयति किं करोमि, स्वदेशमपि परावर्तितुं न शक्नोमि। यतो हि अत्र आगत्य एतावत् विपरिवर्तितं मे रूपं यत् को हि नाम तत्र मां प्रत्यभिज्ञास्यति ? एकदा तु सा प्रत्यूष एव गृहान्निर्गता चतुष्पथे शयानमद्राक्षीत् कमपि जनम्। अधोमुखः धरित्र्यां वक्ष उदरं च संसज्याऽसौ शेते। कोऽयं कुत इह शेते – इति जिज्ञासमाना सा तमुपससर्प। मृणालिनी क्षणं निद्ध्यायन्ती स्थिता। उदरबलेन शयानस्य तस्य वदनमेकपार्श्वतो दृष्टुं शक्यते स्म। परिचितमिव प्रतीयाय तस्य पुरुषस्य मुखम्। मृणालिनी तमुपससर्प दृष्ट्वा च तं संशयविकल्पदोलास्वारोपितेव बभ्राम। जरद्गव एव स पुरुषः स्यात्। परन्तु जरद्गवोऽत्र कथं स्यात् ? नूनं सङ्कल्पोपादानपटुर्भ्रम एवैष ममेति विचार्य मृणालिनी यावदुपसर्पति तावत् मन्दं मन्दं क्षीणं क्षीणं च तस्य पुरुषस्याह्वानमश्रौषीत् – मृणालिनि ! मृणालिनीति। मृणालिनी प्रधाव्य झटिति तत्समीपमाययौ , उत्थापितवती च तम्। जरद्गव किं कृतं त्वया स्वत्मनैव स्वात्मानं प्रतीति सखेदमाह सा। तस्य देहोऽङ्गारकवत् तप्यते स्म। " जरद्गव ! जरद्गव ! कथमीदृशी ते दुरवस्था ? सानुतापमात्मानं गर्हयन्तीव मृणालिनी तं पपृच्छ।

एतावता कालेन त्वामेवान्वेषयामि – क्षीणस्वरेण जरद्गवः प्राह – अत्र हस्तिनापुरस्य अनुसन्धानसमित्या नूनमन्यदेशीयोऽयं गुप्तचारोऽयमिति मत्वा कारागृहेऽहं निक्षिप्तः। तत्राऽहमतीव रुग्णो जातः। मृत्युमुखे निपतितं मां मत्वा ते मां कारागारद् बहिः प्राक्षिपन्। बहोः कालादितस्ततो भ्रमामि। त्वां च पश्याम्यङरक्षकैर्वृताम्। मृणालिनी त्वां विना नाऽहं जीवितुं शक्नोमि। इच्छामि च जीवितुम्। इति।

मृणालिनी क्षीणकायं तमुत्सङ्गे उत्थाप्य प्रचलिता।

शब्दार्थ – मनुजसन्ततयः = मनुष्यों की पीढियाँ, उत्कायते = उत्कण्ठित होना , चिन्तापरा = चिन्तित , ग्लायति = दुखी होना , निध्यायन्ती = सोचती हुई , आह्वानम् = बुलाना , प्रधाव्य = दौड कर , अङ्गारकवत् = अंगारे की तरह , सानुतापम् = अनुताप के साथ।

अनुवाद – सूत जी बोले – मुनिजन ! इसप्रकार से ब्रह्मा का निमेषमात्र काल बीत गया। इतने समय में मनुष्यों की अनेक पीढियाँ आयीं और गयीं। इस समय मृणालिनी के बहुत भक्त थे। वे सदैव उसे घेर कर चलते थे। मृणालिनी का मन जरद्गव से मिलने को उत्कण्ठित होता था परन्तु इतने बडे जन समुदाय से घिरी हुयी होने के कारन वह उसे नहीं खोज पायी। जरद्गव लुप्त हो गया था इसलिये मृणालिनी बहुत दुःखी थी। वह सोचती थी दृ क्या करूँ ? मैम् अपने देश भी नहीं लौट सकती क्योंकि मेरा रूप इतना परिवर्तित हो गया है, अब वहाँ मुझे कौन पहचानेगा। एकबार प्रातःकाल ही घर से निकलकर उसने चौराहे में पडे हुये किसी आदमी को देखा। वह अधोमुख होकर पृथ्वी पर छाती और पेत सटा कर उल्टा पडा था। यह कौन है ? कहाँ से आया है? इत्यादि जिज्ञासा से मृणालिनी उसके पास गयी। वह क्षण भर उसे देखती हुयी वहीं खडी रही। यद्यपि वह पेट के बल लेटा था तथापि उसका मुख दूसरी तरफ्

से देखा जा सकता था। मृणालिनी को उस पुरुष का मुख परिचित की तरह लगा। मृणालिनी उसके और पास गयी और उसे देखकर संशय तथा विकल्प के झूले में चढी हुयी की तरह भ्रमित होने लगी। यह पुरुष जरद्गव ही है। परन्तु जरद्गव यहाँ कैसे हो सकता है ? निश्चय ही यह मेरे मन की इच्छा के कारण उत्पन्न भ्रम ही है , ऐसा सोचकर मृणालिनी जैसे ही उससे दूर हटना चाहती है, वैसे ही धीरे धीरे क्षीण सा उस पुरुष का आह्वान उसे सुनायी पडता – मृणालिनि ! मृणालिनि !

मृणालिनी दौड कर उसके पास गयी और उसे उठा ली। वह दुःखी होकर बोली – जरद्गव ! तुमने अपने से अपने प्रति यह क्या किया ? जरद्गव का शरीर अम्गारे के समान तप रहा था। " जरद्गव ! जरद्गव ! तुम्हारी यह दुर्दशा कैसे हुयी ? सानुताप अपने को कोशती हुयी म्णालिनी ने उससे पूँछा।

जरद्गव क्षीण स्वर में बोला दृ इतने समय से तुम्हें खोज रहा हूँ। यहाँ हस्तिनापुर की अनुसंधान समिति ने , निश्चय ही यह अन्य देश का गुप्तचर है यह मानकर मुझे कारागार में डाल दिया। कारागार में मैं अत्यधिक बीमार हो गया। मुझे मृत्यु के मुख में पडा देखकर उन्होंने कारागार से बाहर फेक दिया। बहुत समय से मैं इधर उधर भटक रहा हूँ। तुम्हें अङ्गरक्षकों से घिरी हुयी देखता हूँ। मृणालिनी , मै तुम्हारे बिना जी नहीं सकता। मैं जीना चाहता हूँ।

मृणालिनी क्षीणकाय जरद्गव को गोद में उठाकर चल पडी।

व्याकरण– मनुजसन्ततयः , मनुजानानां सन्ततयः , तत्पुरुष , अदर्शनम् , न दर्शनम् अदर्शनम्, नञ्तत्पुरुष, गृहान्निर्गता , गृहात् + निर्गता, हल्सन्धि, उपससर्प , उप– सृ – लिट्। अन्यदेशीयः अन्यः देशः यस्य सः, बहुब्रीहि।

15.4 सारांश

इस इकाई में आपने संक्षेप में विचित्र उपाख्यान का अध्ययन किया। प्रत्येक इकाई की शब्दसीमा होने के कारण यहाँ समग्र उपाख्यान अविकल रूप से नहीं दिया जा सका। सम्पूर्ण उपाख्यान का अध्ययन मूल पुस्तक से किया जा सक्ता है। आपने इस उपाख्यान में देखा कि मिनी लुइस और शीबा के इकलौती सन्तान थी। शीबा और लुइस की एक यात्रा के दौरान जलयान में मुलाकात हुयी थी और दोनो विवाह बन्धन में बँध गये थे। मिनी के जन्म के बाद दोनो का विवाहविच्छेद हो गया। लुइस अध्ययनशील व्यक्ति था। जीवन की विषमपरिस्थिति में भी उसने अपनी अध्ययनप्रवृत्ति नहीं छोडी। वह जरद्गव के विषय में पढकर अनुसंधान हेतु भारत आया किन्तु शीबा का संदेश पाकर वापस पेरिस चला गया। उसने मिनी को पाला पोषा तथा उत्तम श्ल्क्षा दिलाया। मिनी जरद्गव पर अनुसन्धान करने की लालसा से भारत आयी। अनेक विपत्तियोम् का सामना करते हुये उसने जरद्गव को प्राप्त किया।

15.5 शब्दावली

इदम्प्रथमतया = पहली बार,

शिशिरसन्ध्यायाम् = ठण्डी के समय की शाम को,

अस्थिच्छेदके = हड्डी को छेदने वाली,

आष्टाशीतिसहस्रम् = अस्सी हजार ,

दूनहृदयाः = दुखी हृदय वाले ,

कालचक्रपरिवर्तनम् = समयचक्र के बदलाव को,

अपहतगाण्डीवः = गाण्डीव नामक अपने धनुष को हटाकर ,

केसरी = सिंह ,

नृत्तगीतवादित्रम् = नाच , गाना और बाजा।

अपसरामि = भाग जाती हूँ।

उत्थितमात्रा = उठते ही।

गुहाद्वारि = गुफा के दरवाजे पर।

साहचर्यम् = साथ।

प्रेमपद्धति = प्रेम करने की रीति।

आवासगृहम् = निवास का घर।

उभयोः = मिनी और जरद्गव के मध्य।

15.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विक्रमचरितम्, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन , नयी दिल्ली , 1999
2. राधावल्लभ की सारस्वत साधना , रमाकान्त पाण्डेय , ईस्तुर्न बुक लिंकर्स , दिल्ली, 2013
3. राधावल्लभ की समीक्षा दृ परम्परा, रमाकान्त पाण्डेय , ईस्तुर्न बुक लिंकर्स , दिल्ली, 2013
4. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ कविराज , चौखम्बा संस्कृत सीरीज , वाराणसी, 2010
5. संस्कृतसाहित्य का समग्र इतिहास, चतुर्थ भाग , राधावल्लभ त्रिपाठी , भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, 2018

15.7 बोध प्रश्न

1. विचित्रोपाख्यान की कथा अपने शब्दों में लिखिये।
2. मिनी का विशद परिचय दीजिये।
3. विचित्रोपाख्यान में संकेतित वर्तमान समाज का उल्लेख कीजिये।
4. मिनी और जरद्गव का परिचय कैसे हुआ।
5. मिनी की दृढता पर प्रकाश डालिये।

15.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ कविराज , चौखम्बा संस्कृत सीरीज , वाराणसी, 2010।
2. संस्कृतसाहित्य का समग्र इतिहास, चतुर्थ भाग , राधावल्लभ त्रिपाठी , भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, 2018।

इकाई 16 उपाख्यानमालिका मायाविनी– द्वितीय उपाख्यान

इकाई की रूपरेखा

16.1 उद्देश्य

16.2 प्रस्तावना

16.3 सूत का पुनः आगमन तथा मुनियों का प्रश्न

16.4 सूत जी द्वारा कथा का प्रारम्भ

16.5 सूत जी द्वारा मालिनी नदी का अन्वेषण

16.6 सूत जी द्वारा मालिनी की दुर्दशा देखना

16.7 सूत जी का मालिनीमर्दनमहोद्योग के लिपिक से मिलन और बातचीत

16.8 सूत जी द्वारा अन्य अधिकारियों के दर्शन

16.9 सूत जी का उस स्त्री का साक्षात् दर्शन करना

16.10 सचिव द्वारा मालिनी के बाँधने में कठिनाई का कथन

16.11 मालिनी की दशा देखकर सूत जी का क्रन्दन

16.12 उस स्थल में सूत की दशा

16.13 साराँश

16.14 शब्दावली

16.15 सन्दर्भग्रन्थ

16.16 अभ्यासप्रश्न

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- विकास की अन्धी दौड़ में नष्ट हो रही प्रकृति का परिज्ञान प्राप्त करेंगे
- सूखती नदियों के बारे में जान सकेंगे
- विशाल भवनों के निर्माण से पर्यावरण के विनाश के बारे में जान सकेंगे
- प्रकृति के संरक्षण का सशक्त संदेश प्राप्त करेंगे
- प्रकृति के संरक्षण की दिशा में चिन्तन हेतु प्रेरणा प्राप्त करेंगे

16.2 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने पढा कि विषमकाल के आने पर नैमिषारण्य में अस्सी हजार ऋषियों ने सूत जी से विचित्र उपाख्यान सुनाने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना पर सूत जी उपाख्यान सुनाने लगे। सूत जी ने कहा – हस्तिनापुर के पास एक विचित्र देश है। उस देश के घने जंगल की गुफा में एक भालू रहता था, जिसका नाम जरद्गव था। उस भालू के बारे में कोई कुछ विशेष नहीं जानता था। उसके बारे में

बहुत प्रकार की किंवदन्तियाँ फैली थीं। उसके अत्याचार से सभी परेशान थे। वह भोली भाली युवतियों को उठा लेता था। जरद्गव का यह वृत्तान्त पूरे विश्व में फैल गया। यद्यपि उसे किसी ने देखा नहीं था तथापि सब लोग अपने अपने अनुसार उसकी बात करते थे।

उस जरद्गव का पता लगाने के लिये फ्राँस देश की मिनी नामक एक लडकी आयी। वह किसी तरह उस वन में पहुँची जहाँ जरद्गव रहता था। इस मिनी की कथा भी विचित्र और आश्चर्यजनक ही है। वह लुइस और शीबा की पुत्री थी। लुइस फ्राँस का निवासी था तथा शीबा थाईलैण्ड की रहने वाली थी। दोनो की मुलाकात एक जहाज में् हुयी और दोनो में प्रेम हो गया। लुइस कुछ दिनों तक शीबा के घर थाईलैण्ड में रहा फिर दोनो फ्राँस चले गये। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद दोनो का विवाह विच्छेद हो गया। मिनी अपनी माँ के पास रहती थी किन्तु माँ की मृत्यु के बाद वह अपने पिता लुइस के पास आगयी। लुइस भी बहुत दिनों तक नहीं जी सका। मिनी जरद्गव के अन्वेषण के लिये वन वन भटक रही थी। उसके प्राणों में अनेक बार संकट आये, वह अपने जीवन की आशा भी खो बैठती थी किन्तु हिम्मत नहीं हारी। उसकी मुलाकात जरद्गव से होती है दोनो के मध्य काफी वाद दृ विवाद भी होता है किन्तु परिस्थिति वश मिनी को उसके साथ रहना पडता है। वह मिनी का नाम मृणालिनी रख देता है। मृणालिनी जरद्गव को बदलने का बहुत प्रयास करती रही किन्तु उसे बदल नही पायी। मृणालिनी समाजसेवा के कार्य में लग गयी। वह दिन भर विचित्र देश के विकास में लगी रहती। जरद्गव के लिये उसके पास समय ही नहीं होता। अन्ततः जरद्गव उसे छोडकर कहीं चला गया। मिनी जरद्गव को खोजना चाहती थी किन्तु उसे समय नहीं मिला। एक दिन नगर के चौराहे में उसने किसी को उलटे मुँह पडे हुये देखा। पास जाकर देखने पर उसे पता चला कि वह जरद्गव है। जरद्गव ने उसे बताया कि पुलिस ने उसे कारागार में डाल दिया था। कुछ दिनों बाद वहाँ उसका स्वास्थ्य खराब होने लगा। यह देखकर पुलिस ने उसे कारागार से बाहर कर दिया। जरद्गव की दुर्दशा देखकर मिनी उसे लेकर चिकित्सालय चली गयी।

इस इकाई में आप "मायाविनी – उपाख्यान" का अध्ययन करेंगे। इस उपाख्यान में आज के तथाकथित विकास की अंधी दौड़ में नष्ट हो रही प्रकृति का वर्णन किया गया है। यह उपाख्यान भी विस्तृत है। यहाँ इसका सम्पादित अंश दिया जा रहा है। उपाख्यान का पूर्ण अध्ययन मूल पुतक से किया जा सकता है।

16.3 सूत का पुनः आगमन तथा मुनियों का प्रश्न

जरद्गवोपाख्यानं श्रावयित्वा सूतः प्राह – सम्प्रति श्रान्तोऽस्मि, क्लान्तोऽस्मि। कानिचिद्दिनानि विश्राम्यामि।अनुजानन्तु अत्रभवन्तो माम्। इत्थमापृच्छमानं निर्बन्धपरं सूतं ते मुनयोऽनिच्छन्तोऽपि प्रस्थानान्न न्यवारयन्। अनन्तरं विगतो महान् कालः। सूतस्य किमभूदिति नाज्ञायत। नैमिषारण्ये शौनकादयोऽष्टाशीतिसहस्रं मुनयो जोषं स्थिताः। सूतः क्व गत इति न ज्ञायते।

शौनकः प्राह – मुनयः ! यदि सूत एव लोपं यातस्तर्हि किमर्थमिह स्थीयते ऽस्माभिः। विहाय नैमिषमन्यं किमपि ग्रहं नक्षत्रं वाऽऽश्रयामहे। तदानीमेव सूत उपेत्य व्यासासनमधिष्ठाय तूष्णीं तस्थौ।

मुनयस्तमपृच्छन् – महामते सूत ! कुत आगम्यते ? सौम्य त्वया विह्वतमेतावता कालेन?

सर्वमेतद् विस्तरेणाचक्ष्व।

शब्दार्थ – जरद्गवोपाख्यानम् = पूर्वोक्त जरद्गवोपाख्यान्। श्रान्तोऽस्मि = थका हूँ। विश्राम्यामि = विश्राम करता हूँ। अनुजानन्तु = अनुमति दें। आपृच्छमानम् = जाने की अनुमति माँग रहे। विगतः = बीत गया। अष्टाशीतिसहस्रम् = अस्सी हजार। जोषम् = शान्त। विहाय नैमिषम् = नैमिषारण्य को छोड़ कर। उपेत्य = आकर।

अनुवाद – जरद्गव – उपाख्यान सुनाने के अनन्तर सूत जी बोले दृ अब मैं थक गया हूँ, क्लान्त हो रहा हूँ। कुछ दिनों तक विश्राम करना चाहता हूँ। आप लोग मुझे अनुमति प्रदान करें। मुनियों की इच्छा तो नहीं थी पर सूत का हठ देखकर उन्हें जाने दिया।

इस प्रकार महान् काल बीत गया। सूत का क्या हुआ यह पता नहीं चला। नैमिषारण्य में अस्सी हजार शौनक आदि मुनि शान्त बैठे थे। सूत कहाँ गये, यह किसी को पता नहीं था।

शौनक बोले – मुनियो, यदि सूत जी ही लुप्त होगये तो हम सब यहाँ क्यों रह रहे हैं? नैमिषारण्य को छोडकर कहीं किसी अन्य ग्रह नक्षत्र में चलते हैं। उसी समय सूत जी आकर व्यासासन में शान्त बैठ गये।

मुनियों ने सूत जी से पूँछा दृ महामति सूत ! आप कहाँ से आरहे हैं ? आप इतने दिनों तक कहाँ विचरण कर रहे थे ? यह सब विस्तार से बताइये।

व्याकरण – जरद्गवोपाख्यानम् – जरद्गवस्य उपाख्यानम् (षष्ठी तत्पुरुष समास),

16.4 सूत जी द्वारा कथा का प्रारम्भ

सूत उवाच – 'मुनयः ! गतवानहं स्वं ग्रामम्। तत्र गत्वा महत्सु सङ्कटेषु निपतितः। महती कथा आस्ते। यथास्मृति यथानुभूतं श्रावयामि। यदि कौतूहलं, श्रूयताम्'। अवाप्याऽहं ग्रामपरिसरं परितो विपरिवर्तितमिव सर्वमपश्यम्। यत्र स्रोतांसि स्यन्दन्ते स्म, तत्र शुष्का निदाघविशीर्णा धरणी, यत्र मनोहरा अनोकहा अभ्रं चुम्बन्ति स्म, तत्र पक्वानि भवनानि भूयसा प्रादुर्भूतानि। केवलमुत्तुङ्गं मालमवलोक्य तदेवेति प्रत्येति मतिः। पुरा अनुमालमेव प्रवहति स्म मालिनी, अधिमालं चाध्यतिष्ठद् ग्रामदेवता। या खलु प्रस्तरमयी अपि सजीवेव, काकिणीनयनाऽपि सर्वं निभालयन्ती वहन्ती ग्रामस्य योगक्षेमं तस्थौ। नासीदुपरि मालं सा ग्राम देवी सम्प्रति। भव्यो बभूव कश्चन देवालयस्तत्स्थाने।

अहं नदीमन्वेषयामि। या परिपूर्णेव समुच्छलन्तीवावगाढमात्रेव स्नपयन्ती देहं स्वयमवनेनिजाना शिशूनामिव नो मुखानि समुत्थितैर्लहरीकराग्रैः सहमानाऽस्माकं कूर्दनानि झम्पनानि आराद् ग्रामं परितो मालमन्तरा च वनं प्रवहमाणा कुत्र सा विलुप्ता सम्प्रति ?

शब्दार्थ – यथास्मृति = जैसा स्मरण आयेगा तदनुसार। कुतूहलम् = जिज्ञासा। अवाप्य = पहुँच कर। स्रोतांसि = झरने। निदाघविशीर्णा – गर्मी से फटी हुयी।अनोकहाः = वृक्ष। अभ्रम् = आकाश। पक्वानि = पक्के। भूयसा = अनेक ,बहुत से। मालम् = टेकरी, ऊँची भूमि। अनुमालम् = टेकरी के आस दृपास। अधिमालम् =टेकरी के ऊपर। काकिणीनयना = कौड़ियों से बनी आँखों वाली। अवगाढमात्रा = गोता लगाने मात्र से। लहरीकराग्रैः = लहरों के हाथों से। झम्पनानि = गोताखोरी।

अनुवाद– सूत जी बोले – मैं अपनेगाँव गया था। वहाँ जाकर महान् संकट में पड़

गया। बहुत बड़ी कथा है। जैसा देखा आउर जैसा अब याद है, वैसा सुनाउंगा। अगर तुम लोगों की जिज्ञासा है तो सुनिये –

गाँव में पहुँच कर मैने सब कुछ बदला सा देखा। जहाँ झरने प्रवाहित होते थे , वहाँ सूखी तथा गर्मी से फटी धरती थी, जहाँ बड़े बड़े वृक्ष आकाश को चूमते थे , वहाँ अनेक पक्के मकान बन गये हैं। केवल ऊँची पहाड़ी को देखकर , यह वही गाँव है , यह समझ में आता है। पहले इसी ऊँची पहाड़ी के पास से ही मालिनी नदी बहा करती थी, उसी पहाड़ी के ऊपर ग्रामदेवता विराजमान थी। वह पत्थर की होकर भी सजीव की तरह थी, उसकी आँखे कौड़ी की बनी थीं पर वह् सब कुछ देखती थी और गाँव का योगक्षेम वहन करती हुयी विराजमान थी।अब उस पहाड़ी के ऊपर वह देवी नहीं थी। उसके स्थान पर कोई बड़ा देवालय बन गया है।

मैं नदी को खोजता रहा। जो पहले हमेशा भरी रहती थी, गोता मात्र लगाने से पूरी देह को नहला देती थी, हम शिशुओं के मुख को अपने लहरों के हाथों से धोती थी तथा हमारे उछलकूद और गोता खोरी को सहन करती थी, जो गाँव से दूर, पहाड़ी के चारो ओर और वन के बीच से बहती थी, वह अब कहाँ विलुप्त हो गयी ?

व्याकरण – यथास्मृति – स्मृतिमनतिक्रम्य (अव्ययीभाव समास), ग्रामपरिसरः – ग्रामस्य परिसरः (षष्ठी तत्पुरुष समास)

16.5 सूत जी द्वारा मालिनी नदी का अन्वेषण

नद्या अवशेषा अवश्यं क्वचित् क्वचिद् दृश्यन्ते। इयमत्र पक्वभवनपङ्क्तिभिरतिक्रान्ताऽपि तन्वी जीर्णा विलोकयितुं शक्यते सैकतपट्टिका। पार्श्वतः प्रकीर्णाः प्रतीयन्ते क्वापि शङ्खशुक्तीनां विरलाः शकलाः। इतश्च प्रबलप्रवाहविघट्टिता विदीर्णा एकतो राशीकृता नीरसाः प्रस्तराः। सिकतायाः प्रस्तराणां चोपयोगो भवननिर्माणे कामं विहित इति दृष्टिमात्रेण ज्ञातुं शक्यते।

एवं चिन्ताचर्चितचित्तश्चकित इवाऽहं पुरत आयान्तं वामहस्तस्थतर्जनीमध्यमयोर्मध्ये सन्दष्टधूमवर्तिकाशकलम्, धूमोद्गाराय विहिताधरोष्ठवृत्तम्, परिहितपादत्राणं कमपि युवानमपृच्छम् – भद्र! बहोः कालादनन्तरमिह समायातोऽस्मि। मन्ये आसीदिह काऽपि नदी मालिनी नाम। सा न दृश्यते ! स तूपेक्षया क्षणं निभाल्य मामुड्डीयमानदृशा प्राह – नदी ? का नाम नदी ? केयं मालिनी वा ?

शब्दार्थ – नद्या अवशेषाः = नदी के अवशेष। क्वचित् क्वचित् = कहीं कहीं। पक्वभवनपङ्क्तिभिः – पक्के महलों की कतारों से। तन्वी – दुबली। शकलाः = टुकड़े। प्रबलप्रवाहविघट्टिताः = तेज बहाव में टकराने से। राशीकृताः = एकत्र किये हुये। वामहस्तस्थतर्जनीमध्यमयोर्मध्ये = बायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा के मध्य। सन्दष्टधूमवर्तिकाशकलम् = सिगरेट के टुकड़े को दबाये हुये। धूमोद्गाराय विहिताधरोष्ठवृत्तम् = धुआ निकालने के लिये ओष्ठ का गोला बनाये हुये।

अनुवाद – वहाँ कहीं कहीं नदी के अवशेष अवश्य दिखायी पड़ रहे थे। पक्के महलों की पंक्तियों से दबी हुयी पतली और पुरानी रेतीली पट्टी दिखायी पड़ रही थी। कहीं कहीं इधर उधर पड़े हुये शंख और शुक्तियों के टुकड़े इधर उधर पड़े दिख रहे थे। तेज प्रवाह के कारण घिसे हुये टेढ़े दृ मेढ़े पत्थरों की राशि भी एक तरफ एकत्रित थी। बालू और पत्थरों का उपयोग भवन बनाने में स्वच्छन्दता से किया जा रहा है, यह

देखने मात्र से ज्ञात हो रहा था।

यह सब देख कर मैं चिन्तित था , मेरा चित्त चकित हो रहा था। तभी मैने सामने से आ रहे एक युवक को देखा। वह अपने बायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा के मध्य सिगरेट का टुकड़ा दबाये था। धुआँ निकालने के लिये वह अपने अधर का गोला बनाये था। उसे देखकर मैने पूछा – भद्र ! मैं बहुत समय के बाद यहाँ आया हूँ। पहले यहाँ कोई मालिनी नाम की नदी बहा करती थी। वह नहीं दिखायी दे रही। उसने क्षण भर मुझे उपेक्षा से देखा और बोला – नदी ? कैसी नदी ? यह कौन सी मालिनी है ?

व्याकरण – सैकतपट्टिका – सैकतानां पट्टिका (षष्ठी तत्पुरुष समास) चिन्ताचर्चितचित्तः – चिन्तया चर्चितं व्याप्तं चित्तं यस्य (बहुब्रीहि समास)

तच्छ्रुत्वा विस्मयविह्वल इव – किमनेनोक्तम्, कुत्राऽहं समागतः, क्वाऽयं ग्रामः दुर्गुणग्रामः, क्व च गता मम जन्मभूमिरीदृशानामविनयानां स्नेहरसानां च भूमिरिति विकल्पदोलायमानमना यावत्किमप्यवधारयामि, तावदेव लगुडहस्तो धृतोष्णीषः पादत्राणविहीनः कश्चन वृद्धः सहसाऽवतीर्य मम दृक्पथम् – आसीदस्ति च मालिनी नदी, सा तत्र पृष्ठतो मालं बध्यत इत्युक्त्वाऽन्तर्दधौ।

अहं कान्दिशीक इवानुमालं प्रस्थितस्तामेव दिशं या तेन सङ्केतिता। मालमुत्तीर्य अन्यस्मिन्नेव लोक आत्मानमहमजानाम्। आसंस्तत्र विविधवादविचक्षणा विवदन्तः, क्वचिज्जल्पाका इव जल्पन्तः क्वचिद् गल्पप्रगल्भा इव कथां कुर्वन्तोऽदृश्यन्त। परितश्च तान् विविधाकृतयः विचित्रचेष्टा दानवाः सञ्चरन्ति। एतेषु कश्चन कस्यचिद् दानवस्य पृष्ठमारूढस्तन्मस्तकं नतमस्तको भ्रामयन् भ्रमयति तम्। अन्यत्र केचन दानवमेकं प्रस्तराणां कुट्टने नियोजयन्ति केचिदपरेऽपरेण दानवेन वज्रलेपचूर्णमिश्रणं कारयन्ति।सुदूरं क्वापि नद्या जलं बन्दीकृतं तिष्ठति।

शब्दार्थ – तच्छ्रुत्वा = उसकी बात सुनकर। विस्मयविह्वलः =आश्चर्य से विह्वल। विकल्पदोलायमानमना = उधेड़बुन से कम्पित मन वाला। धृतोष्णीषः = पगड़ी बाँधे हुये। पादत्राणविहीनः = जूतों से रहित पैरों वाला। कान्दिशीक = भूला – भटका। गल्पप्रगल्भाः = बहस में चतुर। विविधाकृतयः = अनेक प्रकार की आकृति वाले। विचित्रचेष्टाः = विभिन्न चेष्टाओं वाले। दानवाः = राक्षस। प्रस्तराणां कुट्टने = पत्थर कूटने में। वज्रलेपचूर्णमिश्रणम् = सीमेण्ट का चूर्ण मिलाने में।

अनुवाद – उस युवक की बात सुन कर मैं आश्चर्य से विह्वल की तरह – "इसने क्या कहा , मैं कहाँ आगया, कहाँ यह दुर्गुणों से परिपूर्ण ग्राम ? और कहाँ मेरी जन्मभूमि? वह इस प्रकार के अविनयों की भूमि नहीं थी। वह तो स्नेह से परिपूर्ण लोगों की भूमि थी। इस प्रकार उधेड़ दृबुन में पड़ा मैं जब तक कुछ समझ पाता , तभी हाथ में दण्ड लिये, शिर पर साफा बाँधे, पादत्राण (जूतों) से रहित कोई वृद्ध सहसा मुझे दिखायी पड़ा – वह बोला – यहाँ मालिनी नदी थी और है भी। पहाड़ी के पीछे उस पर बाँध बनाया जा रहा है। यह कह कर वहा चला गया।

मैं भूले – भटके की तरह उस पहाड़ी के पीछे उसी दिशा में चल पड़ा, जिधर उस वृद्ध ने संकेत किया था। पहाड़ी से उतरते ही मुझे ऐसा लगा कि मैं दूसरे लोक में आगया हूँ। वहाँ अनेक प्रकार की वेश – भूषा वाले बहुत से लोग थे। वे अनेक विषयों में वाद –विवाद करने में दक्ष प्रतीत हो रहे थे तथा आपस में बहस कर रहे थे। कोई आपस में ही बड़बड़ा रहे थे तो कुछ परस्पर गप्प कर रहे थे। उनके चारो ओर

विचित्रवेष धारण किये हुये दानव घूम रहे थे। उन्में से कोई किसी दानव के पीठ पर बैठ कर अपना शिर झुकाये हुए उसके शिर को घुमा रहा था। कोई दानव पत्थर कूट रहा था तो किसी से सीमेण्ट मिलाने का काम करवाया जा रहा था। यहाँ से कुछ दूर पर ही नदी के पानी को बाँध कर रोक दिया गया था।

व्याकरण – विस्मयविह्वलः – विस्मयेन विह्वलः (तृतीया तत्पुरुष)।
विकल्पदोलायमानमनाः – विकल्पेन दोलायमानं मनो यस्य (बहुब्रीहि समास)।

16.6 सूत जी द्वारा मालिनी की दुर्दशा देखना

क इमे मानवा वशीकृतदानवाः, कोऽयमेतेषां विचित्र उद्यम इति विभावयन्नहमग्रे प्राचलम्। भद्र ! किमिदं स्थानम् ? कुत्रत्या यूयम् ? किमिह कुरुथेति पिपृच्छुर्यं कमपि वक्तुमुत्सहे स एवाऽनिर्वर्ण्य मां स्वनासाभिमुखं प्रचलति। अहमपि प्रचलामि। प्रचलति मयि सुदूरस्थं भूमिगर्तस्य जलं विशालतां प्रपेदे। उत्पीड इव तरङ्गाणां ततो बहिरागन्तुं प्रतीयाय। मध्ये तस्मिन्नपां निधाने सहसा करद्वयं मकरकोटिकङ्कणयुगलमयं समुत्थितम्। सुकोमलौ तौ करौ सहसा मामेवाभिमुखौ सृतौ। मन्ये कापि ललनेह लयं यान्ती आह्वयति मामुद्धारायेत्यहमचिन्तयम्। यावदहं प्रधाव्य तत्करतलं स्वकरतलेन गृहीत्वा तस्या उद्धाराय यते, तावदेव न तत्र तत्करद्वयं, न चाऽपां संहतिः। विच्छिन्नाऽभ्रविलायं लयां याते तस्मिन् सर्वस्मिन् दिङ्मूढ इवाऽहं सम्मुखं भवनमेकं समालोकयम्। लिखितं चासीदतिविशालसङ्केतपट्टके निकषा मुख्यद्वारं स्थापिते तस्य भवनस्य " मालिनीमर्दनमहोद्योग" इति। कोऽयमुद्योगः? क्व चाऽहमागत इत्यजानन् अगत्या तद्भवनमहं प्राविशम्। अभ्यन्तरमासीन्महाञ्जनसम्मर्दः। कक्षात् कक्षं द्वाराद् द्वारं भूमिकाया भूमिकां तल्पादन्यतल्पं जना यान्त्यायान्ति आरोहन्त्यवरोहन्ति वा। "भद्र ! को नाम मालिनीमर्दनमहोद्योगः ? किं नामाऽत्र प्रचलतीति यं कमपि पृच्छामि स एव शून्यनयनाभ्यां मां विलोक्याऽग्रे सरति।

शब्दार्थ – वशीकृतदानवाः = जिन्होंने राक्षसों को वश में कर रखा है। विभावयन् = सोचता हुआ। पिपृच्छुः = पूँछने का इच्छुक। स्वनासाभिमुखम् = सामने की ओर। भूमिगर्तस्य = जमीन का गड्ढा। उत्पीडः = बहाव। मकरकोटिकङ्कणयुगलमयम् = मगर के थूथन के समान नोंको वाले कंगन पहने हुये से। ललना = स्त्री। आह्वयति = बुला रही है। अपां संहतिः – जलराशि। अभ्यन्तरम् = अन्दर जनसम्मर्दः = लोगों की भीड़। शून्यनयानाभ्याम् = सूनी आँखों से।

अनुवाद – ये कौन से मानव हैं जिन्होंने दानवों को वशीभूत कर रखा है। इनका यह कैसा विचित्र उद्यम है , यह सोचता हुआ मै आगे चल पड़ा। भद्र ! यह कौन सा स्थान है ? आप सब कहाँ के निवासी हैं ? यहाँ क्या कर रहे हैं ? यह सब पूछने कि इच्छा से मैं जिस किसी को देख रहा था , वही मुझे देखे बिना अपनी नाक की दिशा में सीधा चला जाता था। मैं भी चल रहा था। मैं चल ही रहा था कि दूरस्थ भूमि के गड्ढे का जल विशालता कोप् धारण करने लगा। ऐसा लग रहा था मानो तरंगों का सघन प्रवाह बाहर आ रहा है। उस जलराशि के मध्य से सहसा मगर के थूथन के समान नोंको वाले कंगन पहने हुये से।दो हाथ ऊपर उठे। वे दोनो सुकोमल हाथ मेरी ओर ही बढ़ रहे थे। ऐसा लगा कि लय को प्राप्त हो रही कोई ललना अपने उद्धार के लिये मुझे बुला रही है। जब तक मैं दौड़ कर उसके करतल को अपने करतल से पकड़ कर उसके उद्धार के प्रयत्न की सोचा तब तक न तो वहाँ दोनो हाथ दिखे और न ही वह जलराशि ही वहाँ बची। जैसे आकाश में चढ़े बादल क्षण भर में विलीन हो

जाते हैं उसीप्रकार उस सबके विलय हो जाने पर दिङ्मूढ़ सा होकर मैंने अपने सम्मुख एक भवन देखा। उस भवन के पास मुख्य द्वार में रखी विशाल संकेतपट्टिका पर "मालिनीमर्दन महोद्योग" लिखा था। यह कैसा उद्योग है ? मैं कहाँ आ गया हूँ ? इत्यादि नजानता हुआ भी मैं उस भवन में प्रविष्ट हो गया। उस भवन के भीतर लोगों की बड़ी भीड़ थी। लोग एक कमरे से दूसरे कमरे एक ड्योढ़ी से दूसरी ड्योढ़ी एक तल्प से दूसरी तल्प में आ जा रहे थे, उतर चढ़ रहे थे। मैं जिस किसी से यह पूछता दृ भद्र ! यह कैसा "मालिनीमर्दनमहोद्योग" है ? यहाँ क्या चल रहा है ?, वे सब सूनी आँखों से मुझे देखकर आगे बढ़ जाते थे।

व्याकरण – वशीकृतदानवाः = वशीकृताः दानवाः यैस्ते, बहुब्रीहिः। भूमिगर्तः = भूमेः गर्तः, बहुब्रीहिः। अपाम् = जलानाम्। ललन + इह = ललनेह, गुणसंधि। तत्करतलम् = तस्याः करतलम् , तत्पुरुषः। महोद्योगः = महा + उद्योगः, गुणसन्धिः।

16.7 सूत जी का मालिनीमर्दनमहोद्योग के लिपिक से मिलन और बातचीत

एकस्मिन् कक्षे दीर्घग्रीवं नाम मार्जारम् आसन्दिकायाम् उपविष्टं काष्ठफलके किमपि लिखन्तम् अहम् अपश्यम्। अपृच्छं च तम् – "दीर्घग्रीव ! त्वं किमिह कुरुषे ? "। सम्मुखस्थपत्रेषु निमग्नग्रीवोऽपि दीर्घग्रीवः उपनेत्रगोल्काभ्यां क्षणं बिहिर्निस्सार्य चक्षुषी निभाल्य माम् अवादीत् – 'त्वं कस्याः शताब्द्याः इहाऽवतरितः ? मां दीर्घग्रीवं ब्रूषे। नाऽहं दीर्घग्रीवो नाम मार्जारः, न वाऽयं भागीरथीतीरे शाल्मलीतरुः। अयं मालिनी – मर्दन –महोद्योगस्य शाखाकार्यालयः।अहमत्र लिपिकः, मालिनीमर्दनमहायोजनायाः तृतीयचरणस्य प्रारूपं मया निर्मीयते। तदपसर। अलं मदीयराष्ट्रियकार्ये विघ्नोत्पादनेन'। इति।

शब्दार्थ – एकस्मिन् कक्षे = एक कमरे में। मार्जारम् = विडाल। आसन्दिका = कुर्सी। सम्मुखस्थपत्रेषु = सामने रखे पन्नों पर। निमग्नग्रीवः = गर्दन झुकाये हुये।

अनुवाद – मैने एक कमरे में दीर्घग्रीव नाम के मार्जार को कुर्सी में बैठकर मेज पर कुछ लिखते देखा। मैने उससे पूछा – दीर्घग्रीव ! तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? सामने रखे पन्नों परा गर्दन झुकाये हुये उसने चश्में के काचों से क्षण भर के लिये आँखें निकाल कर मुझे देखता हुआ बोला – तुम किस शताब्दी से यहाँ उतरे हो। मुझे दीर्घग्रीव बोल रहे हो। न तो मईं दीर्घग्रीव नामक विडाल हूँ और न ही भागीरथी के तट का शाल्मली तरु। मैं यहाँ मालिनी – मर्दन दृमहायोजना के तृतीय चरण का प्रारूप बना रहा हूँ। इसलिये दूर हटो। मेरे राष्ट्रीय कार्य में विघ्न उत्पन्न मत करो।

व्याकरण – आसन्दिकायाम् = सप्तमी एकवचन। निमग्नग्रीवः = निमग्ना ग्रीवा यस्य सः . बहुब्रीहिः।

16.8 सूत जी द्वारा अन्य अधिकारियों के दर्शन

अनवगच्छन् तदीयवचनानां परमार्थं तस्मिन् महाभवने भ्राम्यन्नितस्ततो ऽहमुपरिभूमिकायां सुसज्जितं कक्षमेकमविशम्। तस्मिन् कक्षे राजसभा प्रचलति। सिंहासने विचित्रवेशभूषाविभूषितो राजा, वेत्रासनेषु पञ्चषाः प्रधानाः मुण्डासनेष्वपरे बहव उपविष्टाः। आपादमस्तकं ते वस्त्रैराच्छन्नाः। अपरमिदमतिविचित्रं यत् तेषां कण्ठे न यज्ञोपवीतानि अपितु कौपीनानि लम्बन्ते।, मणिबन्धेषु न कङ्कणान्यपितु घटिकायन्त्राणि निबद्धानि।

तेषु घटिकायन्त्रेषु ते मुहुर्मुहुर्दृष्टिपातं कुर्वन्ति, अन्यथा समयागती रुद्धा स्यादित्येव मन्वानाः। मध्ये तेषां प्रलम्बग्रीव उन्नतघोण उपनेत्रधारणाच्चतुर्नेत्र उभयोः पार्श्वयोः सचिवद्वयेन वेष्टितत्वात् त्रिशिराः षड्बाहुश्च महाहनुः, प्रकटितजत्रू राजा पुरोवर्तिनीं शृङ्खलाभिर्बद्धां मुहुर्मुहुर्निश्वसन्तीम् अबिन्दुसुन्दरीमपि गलल्लावण्यबिन्दुकाम् , प्रसन्नामप्यवसन्नाम्, शोच्यामपि शुचिदर्शनाम–, व्याघ्रैः परिवारितामिव हरिणीम् , मङ्गलकरिणीमप्यमङ्गलवस्तुपरिवेष्टिताम्, अत्यन्ततन्वीमपि तनोरतनुप्रभाभिरापूरितभुवनाभोगाम्, बन्धनानां त्रोटनाय यतमानां समन्तात् रक्षापुरुषैर्नियम्यमानां कशाभिस्ताड्यमानां च ललनां सरोषमपश्यत्।

शब्दार्थ – अनवगच्छन् = न समझता हुआ। परमार्थम् = वास्तविकता। भ्राम्यन्नितस्ततः = इधर – उधर घूमता हुआ। आपादमस्तकम् = शिर से पैर तक। मुहुर्मुहुः = बार – बार। घटिकायन्त्रेषु = घड़ियों में। श्रङ्खलाभिः = जंजीरों से। रक्षापुरुषैः = रक्षा पुरुषों द्वारा। कशाभिः = कोड़ों से। अबिन्दुसुन्दरी = जल में प्रतिविम्बित चन्द्रमा के समान सुन्दर।प्रसन्न = निर्मल।

अनुवाद – उसके वचनों के रहस्य को मैं समझ नहीं पा रहा था। मैं उस विशाल भवन में इधर – उधर घूमता हुआ वहाँ से ऊपर के मंजिल में सुसज्जित एक कमरे में प्रविष्ट हुआ। उस कक्ष में राजसभा चल रही थी। विचित्र वेषभूषा से सुसज्जित राजा सिंहासन पर बैठा हुआ था। उसके पास बेंत के आसनों पर पाँच – छः मन्त्री बैठे हुये थे। बहुत लोग मुड्ढों पर बैठे हुये थे।वे शिर से पैर तक कपड़ों से आच्छादित थे। वहाँ एक यह बड़ी विचित्रता थी कि उनके गले में जनेऊ नहीं थे अपितु कौपीन (टाई) लटक रहे थे , उनकी कलाई पर कंकण नही अपितु घड़ियाँ बँधी थीं। वे उन घड़ियों को बार बार देख रहे थे , लगता है कि वे ऐसा मान रहे थे कि इसके न देखने से समय की गति ही रुक जायेगी। उनके बीच में राजा बैठा हुआ था। उस राजा की गर्दन लम्बी थी , नाक उँची थी , उसके अगल– बगल दो सचिव बैठे थे। उनके कारण यह लगता था मानो वह तीन शिर वाला है तथा उसके छः भुजायें हैं। उसकी ठुड्ढी अति विशाल थी और कनपटियों की हड्डियाँ बाहर निकली हुयीं थीं। उसके सामने जंजीरों से बँधी एक स्त्री थी,जो छूटने को छटपटा रही थी तथा वह राजा उस स्त्री को क्रोध से घूर रहा था। वह स्त्री बार– बार साँस खीचती और छोड़ती थी। वह अबिन्दुसुन्दरी होकर भी सौन्दर्य की बूँदें टपका रही थी। वह प्रसन्न होकर भी अवसन्न थी , शोच्य होकर भी वह शुचिदर्शना थी , वह व्याघ्रों से घिरी हरिणी सी प्रतीत हो रही थी , मंगल करने वाली होकर भी अमाँगलिक वस्तुओं से परिवेष्टित सी लग रही थी। उसकी देह कृश थी तथापि अपने देह की कान्ति से वह धरती कए विस्तार पूरा करती सी लगती थी। चारों ओर से रक्षा पुरुषों ने उसे घेर रखा था और वे उसे कोड़ों से पीट रहे थे।

व्याकरण – विचित्रवेषभूषाविभूषितः – विचित्रवेषभूषाभिः विभूषितः, तत्पुरुष। वेत्रासनेषु –वेत्रस्य आसनेषु ,षष्ठी तत्पुरुष। षड्बाहुः – षड् बाहवो यस्य सः , बहुब्रीहि।

16.9 सूत जी का उस स्त्री का साक्षात् दर्शन करना –

अहं च चकितो निर्निमेषनयनाभ्यां तस्याः करयुगलमवाऽऽलोकयम्। मकरकोटिमयं तादृशमेव कङ्कणयुगलं तस्या अपि करे विभाति यन्मया सद्य एव जले निमज्जिताया रमण्या उत्थिते हस्ते दृष्टमासीत्।प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययेन सैवेयमित्यासीद् दृढा मे मतिः। परन्तु या तत्र जले निमग्ना सा कथमिह प्राप्तेति दिग्भ्रान्तोऽहं यावत् किमपि निर्धारयामि, तावत् स

राजा सहसा निवार्य नेत्रयुगलं तस्या ललनाया वदनाद् वामभाग उपविष्टं प्रधानं पपृच्छ – अस्या मालिन्या बन्धने अस्माकं वैफल्ये को हेतुः ?

शब्दार्थः – निर्निमेषनयनाभ्याम् =पलक झपकाये बिना। करयुगलम् = दोनो हाथ। कङ्कणयुगलम् = कंगन के जोड़े। निमज्जितायाः = डूबी हुयी।

अनुवाद – मैं चकित होकर निष्पलक नेत्रों से उस स्त्री के दोनो हाथों को देखा। उसके हाथ में मगर के थूथन के समान उसी प्रकार के कंगनों का जोड़ा सुशोभित हो रहे थे, जो मेरे द्वारा पूर्व में देखी गयी स्त्री के उठे हुये हाथो में थे। उसे पहचान कर मुझे यह विश्वास हो गया कि यह वही स्त्री है। किन्तु जो उस समय जल में निमग्न हो गयी थी वह फिर यहाँ कैसे आयी, यह सोचकर दिग्भ्रान्त होकर मै जैसे ही कुछ निश्चय करने का प्रयास कर रहा था, तभी वह राजा उस स्त्री के मुखमंडल से आँखे हटाकर बायें भाग में बैठे सचिव से पूछा – इस मालिनी को बाँधने में हमारी असफलता का क्या कारण है ?

व्याकरण – प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययेन – प्रत्यभिज्ञायाः प्रत्ययेन , तत्पुरुष।

16.10 सचिव द्वारा मालिनी के बाँधने में कठिनाई का कथन

पार्श्वोपविष्टः प्रधानः सप्रश्रयं प्रोवाच – स्वामिन् ! मुहुर्धारिताऽपीयं दुष्टा निस्सरति बहिः। सर्वमपि स्वकीयं रसजातमियं स्वस्मिन् सङ्कोचयति। इदानीमियं वशमायाता। इदानीं सुबद्धा। इदानीं क्व अपयास्यति। इदानीमस्या रसेन कृषिं, विद्युत्, महदृद्धिं वृद्धिं प्रगतिं च प्राप्स्यामः।

राजोवाच – कशाभिस्ताड्यतामियम्। इयमतीव चञ्चला। सुष्ठु बध्यतामियम्।

शब्दार्थ – पार्श्वोपविष्टः = पास में बैठा हुआ। प्रधानः = प्रधान सचिव। मुहुर्धारिताऽपि = बार बार बाँधी गयी। रसजातम् = रस (जल)। सुबद्धा = अच्छी प्रकार बाँध दी गयी है।

अनुवाद – पास में बैठा हुआ प्रधान सचिव सप्रश्रय बोला – स्वामिन् ! बार बार बाँधी गयी यह दुष्टा बाहर निकल जाती है। अपने समग्र रस को अपने में ही समेट लेती है। अब यह पकड़ में आयी है। अब इसे अच्छी तरह से बाँध ली गयी है। अब यह कहाँ जायेगी। अब इसके रस से हम कृषि, बिजली, ऋद्धि और वृद्धि प्राप्त करेगे।

व्याकरण – पार्श्वोपविष्टः – पार्श्व + उपविष्टः, गुण सन्धि। धारिताऽपि – धारिता + अपि, दीर्घ सन्धि।

16.11 मालिनी की दशा देखकर सूत जी का क्रन्दन

निशम्य तदीयमादेशं सेवकाः समधिकतरं तां लावण्यमयीं करुणं लपन्तीं ललनां कशाघातैरताडयन्। तस्याश्चीत्कृतिभिः पूर्यतेव निखिलमपि भुवनाभोगश्चचाल च मेदिनी। श्रावं श्रावं च तच्चीत्कृतीः कृतीव राजा जहास।तस्याश्चीत्कृतीरस्य चाऽट्टहासमधरीकुर्वन्त्युच्चेन स्वरेणाऽहं चक्रन्द – अरे, किमिति यूयमसहायां ललनामिमां त्रासयथ मारयथ च। कोऽयमसत्सङ्कल्पसमुत्थ उद्योगो युष्माकम्, कश्चाऽनेन लाभः ?

शब्दार्थ – निशम्य = सुनकर। तदीयम् = उस राजा के। कशाघातैः = कोड़ों से।

चीत्कृतिभिः = चीत्कारों से। भुवनाभोगः = भुवन के विस्तार को।

अनुवाद – उसके आदेश को सुन कर सेवकों ने उस लावण्यमयी , करुण विलाप कर रही ललना को कोड़ों से पीटना शुरू किया। उस ललना की चीत्कार से समग्र भुवन भर गया , पृथ्वी डोलने लगी। उस ललना के चीत्कार को सुन सुन कर अपने को कृतकृत्य मानता हुआ वह राजा हँस रहा था। उस ललना के चीत्कार तथा इस राजा के अट्टहास को दबाता हुआ मैं अति उच्चस्वर से क्रन्दन करता हुआ बोला – अरे ! आप लोग इस असहाय ललना को क्यों सता और मार रहे हैं।यह असत्संकल्प से उत्पन्न यह तुम लोगों का कैसा उद्योग है? इससे क्या लाभ है ?

16.12 उस स्थल में सूत की दशा

इति निगदति मयि सहसैव स्फूर्जदशनिसहस्रसम्पातं पुष्करावर्तकतुमुलनादसङ्घातं भूश्चकम्पे। मशक –ज्वरग्रस्तमिव भुवनमण्डलमवेपत। अये ! किमेतत्, को नाम मम सिंहासनं प्रचालयतीति क्रन्दमानो राजा भूमौ पपात। भूकम्पो भूकम्प इति वदन्तो निर्ययुर्मन्त्रिणस्तस्मात् कक्षात्। तस्मिन् महति जनसम्मर्दे संरम्भे कोलाहले च कः किं करोति, किं कथयतीति नाऽहमजानाम्। कान्दिशीक इव इतस्ततो गच्छन् महता जनौघेन वारितस्तस्मिन्नेव कक्षे कन्दुक इव इतस्ततो निक्षिप्तः क्वचिदुत्क्षिप्तः क्वचिन्निपातित चीत्कारभरैः कोलाहलैर्न किमपि शृण्वन् वा जनान् वा चिरं चकित इव चिन्ताचर्चितचित्त इव आवर्तग्रस्त इव तर्तुम – जानन्निव उल्लोलवीचिसमूहैरिवोत्पातितो निपातितो नीतः कथं च तस्माद् भवनाद् बहिरायात इति नाऽहम –जानाम्।

शब्दार्थ – निगदति = कहने पर। सहसैव = अचानक ही। स्फूर्जदशनिसहस्रसम्पातम् = सैकड़ो बिजलियों का कड़कते हुये एक साथ गिरना। पुष्करावर्तकतुमुलनादसङ्घातम् = प्रलय कालीन पुष्करावर्तक आदि मेंघों की गर्जना के समान। मशकज्वरग्रस्तमिव= मलेरिया बुखार से ग्रस्त व्यक्ति की तरह। जनसम्मर्दे = लोगों की भीड़ में। उल्लोलवीचिसमूहैः = उछल रही तरंगों के समूह से।

अनुवाद – मैं ऐसा कह ही रहा थ कि अचानक ही भूमि काँपने लगी। ऐसा लगा मानो सैकड़ों बिजलियाँ कड़क– कड़क कर गिर रहीं हैं, मानो प्रलयकाल में घनघोर वृष्टि करने वाले पुष्करावर्तक आदि मेघ एक साथ गरज उठे हों। उस समय सम्पूर्ण संसार ऐसे काँप रहा था मानो कोई मलेरिया बुखार से ग्रस्त कोई व्यक्ति काँप रहा हो। अरे ! यह क्या हो रहा है ? मेरे सिंहासन को कौन हिला रहा है, यह क्रन्दन करता हुआ राजा पृथ्वी पर गिर पड़ा। – भूकम्प आगया , भूकम्प आगया – यह कहते हुये मन्त्री उस कमरे के बाहर भागने लगे। उस विशाल भूलभुलैया और कोलाहल में मुझे यह पता ही नहीं चला कि कौन क्या कह रहा है तथा कौन क्या कर रहा है। उस भीड़ में चलता हुआ मैं इधर उधर चलता हुआ गेंद की तरह इस कमरे से उस कमरे में फेका जाने लगा। मुझे कोई उठाता, कोई गिराता। मैं चीत्कारभरे कोलाहल में कुछ भी नहीं सुन पा रहा था , कुछ भी नहीं जान पा रहा था। बहुत देर तक तक चकित की तरह, चिन्ता से व्याप्त चित्त वाला मैं भँवर में फँसा हुआ तथा तैरना न जानने वाले की तरह उछल रही लहरों से उठाया और गिराया जाता हुआ मैं उस भवन से कैसे बाहर आगया, यह मैं नहीं जान पाया।

व्याकरण – सहसैव – सहसा + एव , वृद्धि सन्धि। भुवनम्ण्डलम् = भुवनस्य मण्डलम्, तत्पुरुष। जनसम्मर्दे = जनानां सम्मर्दे , तत्पुरुष।

16.13 सारांश

इस इकाई में कविवर राधावल्लभ त्रिपाठी ने आज विश्व के सामने उपस्थित पर्यावरण की विभीषिका का चित्रण किया है। मालिनी जैसी अनेक नदियों को बाँध कर मानव ने उनके अस्तित्व को समाप्त कर दिया है। कवि ने नदी को सुन्दर स्त्री के रूप में चित्रित किया है तथा उसे बाँधने वालो को उन्होंने भयानक स्वरूप प्रदान किया है। आपने देखा है कि सूत जी अपने गाँव गये थे। वे मुनियों से बताते हैं कि " मैं वहाँ जाकर महान् संकट में पड़ गया। बहुत बड़ी कथा है। जैसा देखा आउर जैसा अब याद है, वैसा सुनाउंगा। अगर तुम लोगों की जिज्ञासा है तो सुनिये "–

गाँव में पहुँच कर मैने सब कुछ बदला सा देखा। जहाँ झरने प्रवाहित होते थे , वहाँ सूखी तथा गर्मी से फटी धरती थी, जहाँ बड़े बड़े वृक्ष आकाश को चूमते थे , वहाँ अनेक पक्के मकान बन गये हैं। केवल ऊँची पहाड़ी को देखकर , यह वही गाँव है , यह समझ में आता है। पहले इसी ऊँची पहाड़ी के पास से ही मालिनी नदी बहा करती थी, उसी पहाड़ी के ऊपर ग्रामदेवता विराजमान थी। वह पत्थर की होकर भी सजीव की तरह थी, उसकी आँखे कौड़ी की बनी थीं पर वह् सब कुछ देखती थी और गाँव का योगक्षेम वहन करती हुयी विराजमान थी।अब उस पहाड़ी के ऊपर वह देवी नहीं थी। उसके स्थान पर कोई बड़ा देवालय बन गया है।

मैं नदी को खोजता रहा। जो पहले हमेशा भरी रहती थी, गोता मात्र लगाने से पूरी देह को नहला देती थी, हम शिशुओं के मुख को अपने लहरों के हाथों से धोती थी तथा हमारे उछलकूद और गोता खोरी को सहन करती थी, जो गाँव से दूर, पहाड़ी के चारो ओर और वन के बीच से बहती थी, वह अब कहाँ विलुप्त हो गयी ?

मायाविनी – उपाख्यान का यह कुछ ही अंश यहा प्रस्तुत किया गया है। इसका समग्र अध्ययन आपको मूल पुस्तक से करना चाहिये। प्रत्येक इकाई की सीमा निर्धारित होने के कारण किसी भी आख्यान को यहाँ पूरा नहीं दिया जा सका। इस इकाई में आपने जोइ पढ़ा है उसके आगे का वर्णन यह है कि सूत जी के उस भवन से बाहर आते ही वहाँ महान् विस्फोट हुआ और वह भवन ध्वस्त हो गया। उस टेकड़ी के पीछे विशाल जल धारा बहती दिखाई देती है। यह देख कर सूत जी उस ओर दौड़ते हैं किन्तु वहाँ उन्हें जल की धारा दिखाई नहीं देती। वही स्त्री उन्हें नजर आती है जिसे उन्होंने पहले जंजीरों से जकड़ी देखा था। सहसा वहाँ आरक्षिदल आता है तथा सूत जी को विस्फोट करने वाला अज़ीमुल्ला समझ कर पकड़ लेता है। सूत जी की बहुत कहने तथा अपने को निर्दोष सिद्ध करने के बाद भी वे उन्हें नहीं छोड़ते। वे सब सूत को घसीतने लगते हैं सूत को गाँव की ओर लेजाते हैं। सूत को वहाँ कुछ जाना पहचाना सा लगता है और वे देवी निम्बवती को प्रणाम करते हैं। वहाँ कुछ घर भी उन्हें जाने पहचाने से लगते हैं। किसी बूढ़े की जमानत पर पुलिस सूत को छोड़ती है किन्तु सूत और बड़ी विपत्ति में फँस जाते हैं। किसी मायाविनी स्त्री के द्वारा वे सताये जाते हैं। बहुत दिनों तक वहाँ रह कर वे मुनियों के पास पुनः पहुचते हैं।

16.14 शब्दावली

जरद्गवोपाख्यानम् = पूर्वोक्त जरद्गवोपाख्यान

श्रान्तोऽस्मि = थका हूँ

विश्राम्यामि = विश्राम करता हूँ

अनुजानन्तु = अनुमति दें

आपृच्छमानम् = जाने की अनुमति माँग रहे

विगतः = बीत गया

अष्टाशीतिसहस्रम् = अस्सी हजार

जोषम् = शान्त

नैमिषम् = नैमिषारण्य

16.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास , राधावल्लभ त्रिपाठी, भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, 2018
2. उपाख्यानमालिका, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, वाराणसी, 2004
4. आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य, कलानाथ शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
5. आधुनिक संस्कृत साहित्य सन्दर्भ सूची, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

16.16 बोध प्रश्न

1. मायविनी – उपाख्यान से कवि को क्या अभिप्रेत है ?
2. इस अध्ययन के आधार पर वर्तमान पर्यावरण संकट पर प्रकाश डालिये।
3. सूत की मनोदशा का वर्णन कीजिये
4. इस वर्णन के आधार पर आज की नदियों तथा गाँवों का चित्रण कीजिये।
5. इस इकाई का साराँश अपने शब्दों में लिखिये।

16.17 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य, कलानाथ शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
2. आधुनिक संस्कृत साहित्य सन्दर्भ सूची, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।

इकाई 17 उपाख्यानमालिका अभिनवशाकुन्तलम् – तृतीय उपाख्यान

इकाई की रूपरेखा

17.1 उद्देश्य

17.2 प्रस्तावना

17.3 सूत का नैमिषारण्य आगमन

17.4 सारांश

17.5 शब्दावली

17.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

17.7 अभ्यास प्रश्न

17.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

17.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- वर्तमान काल में शिक्षा की समस्याओं को जान सकेंगे।
- अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रतीक से कवि द्वार संकेतित सामाजिक विषयों को जान सकेंगे।
- संस्कृत गद्य का आधुनिक स्वरूप जान सकेंगे।
- संस्कृत भाषा की युगानुरूपता को जान सकेंगे।

17.2 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने मायाविनी उपाख्यान के माध्यम से यह जाना कि आज की मशीनरी हमारे पर्यावरण को पूर्णतः नष्ट कर रही है। नदियाँ सूख रहीं हैं , महान् नदियों को बाँध कर उनके अस्तित्व को मिटाया जा रहा है। अभिज्ञानशाकुन्तल शीर्षक इस इकाई में आप आज की शिक्षाव्यवस्था में व्याप्त अनियमितता को जान सकेंगे। आज की शिक्षाव्यवस्था से हमारी संस्कृति भी छिन्न भिन्न हो रही है। अभिज्ञानशाकुन्तल शीर्षक इस इकाई में मूलग्रन्थ का सम्पूर्ण अंश नहीं दिया जा सकता , अतः आप इस उपाख्यान को मूलग्रन्थ से पढ़ें।

17.3 सूत का नैमिषारण्य आगमन

मायाविन्युपाख्यानं श्रावयित्वा पुनरपि कञ्चित्कालं सूतोऽदर्शनं गतः। मुनयोऽपि ते शौनकादयो नास्य महर्षेः सूतस्य पुरेव पुराकथादिकथने रुचिर्वर्तत इति विचिन्त्य ताटस्थ्यं गताः। युगा अतीताः। मुनयस्त्वद्यापि नैमिषे सन्ति। सूतो न तत्र भवति। मुनयो मौनमालम्ब्य स्थिताः। सूत आगमिष्यति वा न वेति ते न जानन्ति। एकदा तु नातिदूरोदिते नवनलिनदलसम्पुटभिदि सवितरि स्वस्वकुलायान् त्यजत्सु विहङ्गमेषु

विधाय प्रातःसवनं निवृत्तेषु मुनिषु सहसा कश्चन जनो नैमिषं विशन्नदृश्यत। शौनक आह– मुनयः! परिचिताऽप्यपरिचितेव काप्याकृतिर्दृश्यते। किं कुर्मः। बहोः कालात् सर्वैरस्माभिरनुभूयते यन्नैमिषं निमिषमात्रमपि न स्थातुमर्हमिदानीम्। अत्र महान् प्रत्यवायाः परापतन्ति। तदन्यस्मिन् ग्रहे नक्षत्रे वा वसतिं कल्पयामः।

अशीतिसहस्रमुनिषु अश्मकुट्टो नाम मुनिः सहसोच्चौर्जगाद–मुने! अलं भयेन। एव तावदस्माकं चिरपरिचितः सूत एव समायाति। श्रुत्वा बहूनां मुनीनां कण्ठेभ्यो निस्ससार समवेतो महान् नादः – अरे, कथमयं नः सूत ऋषिरेव! शौनकः सूतं पपृच्छ–मुने! केयं भवतोऽवस्थाः? मुनिवेशं परित्यज सर्वता। नवीनं परिधानम्, इदमुपनेत्रम्, पाश्चात्त्यानीमानि वस्त्राणिः यद्यपि किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनामिति सत्यमुक्तं महाकविना, परन्त्वपरिचयान्नैष वेषः श्लिष्यति नो मनःसु–इति।

शब्दार्थ– मायाविन्युपाख्यानम् = मायाविनी उपाख्यान , श्रावयित्वा = सुना कर, नवनलिनदलसम्पुटभिदि = नये कमलों के सम्पुट को खिलाने वाले ,सवितरि = सूर्य , स्वस्वकुलायान् = अपने –अपने घोसलों को , विहङ्गमेषु = पक्षी , निमिषमात्रमपि = क्षण भर भी।

अनुवाद – मायाविनी – उपाख्यान सुनाने के बाद सूत जी कुछ समय के लिये कहीं चले हो गये। शौनक आदि मुनियों को भी यह लगने लगा कि सूत जी की अब पहले की तरह आख्यान–उपाख्यान सुनाने में रुचि नहीं रह गई, अतः वे मुनि जन भी उनकी ओर से तटस्थ हो गये। युग बीत गये। मुनि जन तो अभी भी नैमिष में हैं, सूत जी ही वहाँ नहीं रहते। मुनि अब वहाँ मौन साध कर रहने लग गये हैं। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं कि अब सूत जी आयेंगे या नहीं। एक बार कमल की पंखुड़ियों के पुट को खोलने वाले सूर्यदेव जब उग ही रहे थे, पक्षी अपने–अपने घोंसलों को छोड़कर जा ही रहे थे तथा मुनिजन प्रातःसन्ध्या कर के निवृत्त हो ही रहे थे कि उन्हें कोई व्यक्ति नैमिषारण्य में प्रवेश करता हुआ सा दिखाई दिया। शौनक जी ने कहा दृ हे मुनिजन ! कोई परिचित सी लगती हुई भी अपरिचित सी आकृति इधर आ रही है। क्या करें, बहुत समय से हम यह अनुभव कर रहे हैं कि नैमिषारण्य अब एक निमेष के लिये भी हमारे रहने के योग्य नहीं बचा। यहाँ बड़े दृ बड़े विघ्न उपस्थित होने लगे हैं। हमें अब किसी और ग्रह नक्षत्र पर जा कर रहना चाहिये। अट्ठासी हजार मुनियों में से एक अश्मकुट्ट नाम के मुनि थे। उन्होंने अचानक तीव्र स्वर में कहा दृ हे मुनिजन ! भय मत करिये। ये तो हमारे चिरपरिचित सूत जी ही चले आ रहे हैं।

यह सुनकर अनेक मुनियों के कंठ से एक साथ यही स्वर निकला – ये तो हमारे सूत जी ही हैं।

शौनक जी ने सूत जी से पूछा – हे मुनिवर ! आपकी यह दशा क्यों है? मुनिवेश त्याग कर सर्वथा नवीन परिधान आपने ग्रहण कर लिया है, आपने चश्मा लगा रखा है और विदेशीवेश दृभूषा धारण कर रखे हैं। वस्तुतः जो सुन्दर लोग होते हैं उन पर सब कुछ अच्छा लगता है – यह बात महाकवि कालिदास ने ठीक कही है, फिर भी अपरिचय के कारण यह वेश हमें आप के ऊपर अच्छा नहीं लग रहा।

व्याकरण – मायाविन्युपाख्यानम् = मायाविन्या उपाख्यानम् , मायाविन्युपाख्यानम् , षष्ठी तत्पुरुष। नवनलिनदलसम्पुटभिदि = नवनलिनानां कमलानां सम्पुटं भिनत्तीति तस्मिन्। सवितरि = सप्तमी एक वचन।

मुनियों का सूत जी से कथा सुनाने का आग्रह करना –

सूत आह–मुनयः, कालोऽयं सर्वं परिवर्तयति। ये कालक्रमेण न परिवर्तन्ते, ते त्वन्ततोऽन्तमेव यान्ति। अहमपि कथं तथाभूतः स्थातुं शक्नुयाम्? इदानीमहं विश्वविद्यालये प्राध्यापकोऽस्मि। वेषभूषया कामं परिवर्तितस्तथापि तामेव विद्यां समधिकतरं मनोयोगेन पाठयामि, याऽनूचानेभ्योऽधिगता। अत एव स एवास्मि सूत इति भवन्तो मन्यन्ताम्।

सूतस्य वचनमनेके मुनयो नोरीकृतवन्तः। तथापि बहवस्तं पूर्ववदेव बहुमानपुरस्सरमधिव्यासासनमुपवेश्य श्श्मुने कथ्यतां स्वजीवनगतैव कथेत्यनुरोधमकार्षुः।

शब्दार्थ – कालोऽयम् = यह समय। तथाभूतः = उस प्रकार का। वेषभूषया = वेषभूषा से। परिवर्तितः = बदल जाना। अनूचानेभ्यः = पूर्व विद्वानों से।

अनुवाद – सूत जी बोले – हे मुनियो ! यह काल सब कुछ बदल देता है। जो कालक्रम के अनुसार परिवर्तित नहीं होते, वे अन्ततः समाप्त ही हो जाते हैं। मैं भी कैसे बिना बदले रह सकता हूँ। अब मैं विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हूँ। मैं वेषभूषा से भले ही बदल गया हूँ तथापि उसी विद्या को मनोयोग से पढ़ाता हूँ , जो हमें पूर्व विद्वानों से प्राप्त हुयी है। इसलिये मैं वही सूत हूँ , यह आप लोग स्वीकार करें। कुछ मुनियों ने सूत के वचनों को स्वीकार नहीं किया तथापि बहुतों ने पहले की भाँति उन्हें आदर पूर्वक व्यासासन में बैठाकर उनसे अपने ही जीवन की कथा कहने का आग्रह किया।

व्याकरण – कालक्रमेण = तृतीया एकवचन, त्वन्ततः = तु + अन्ततः– यण् सन्धि। नोरीतवन्तः = न + ऊरीकृतवन्तः – गुणसन्धि। अधिव्यासासनम् = व्यासासने इति अधिव्यासासनम् – अव्ययीभाव समास।

सूत का कथा सुनाना –

सूत उवाच – नवीनयैव शैल्या सम्प्रति कथां स्वीयां वा परकीयां वा कथयिष्यामि। श्रूयताम्।

शैशव एव मत्पितृपादाः मां देवपुरस्थे गुरुकुले निक्षिप्तवन्तः। आरात् गुरुकुलमभूदतिगहनं वनम्। तत्रैव मयेदम्प्रथमतया विलोकिता हरिणाः विश्रब्धं विचरन्तः। शशा अपि तत्र मया दृष्टा गुल्मेभ्यः सरन्तस्तिरोभवन्तः। वर्षासु मयूरास्तत्र नृत्यन्तोऽदृश्यन्त। शकुन्तलापि मया तत्रैव साक्षात्कृता।

शकुन्तलाया अभिज्ञानेऽलमहमभूवमित्यत्र हेतुरासीच्छाकुन्तलस्य पाठः। क्षीरकण्ठेन मया गुरुभ्यो बिभ्यताऽपि छन्नं तदानीमभिज्ञानशाकुन्तलमपाठि, साक्षाच्च तत्प्रभावात् शकुन्तला व्यलोकि।

जीवनं शाकुन्तलं च परस्परेण विप्रतिषिद्धे। परन्तु तस्मिन् कैशौर्येऽहं तु शाकुन्तलं स्वजीवनं च मिथुनीकृत्याऽपश्यम्। विरुद्धबुद्धिसम्भेदादविवेचितसम्प्लवं जीवनशाकुन्तलं तदानीं मयाऽनुभूतम्।

अधुना पाठयामि स्नातकोत्तरकक्षायाश्छात्रान् यत् कालिदासो विक्रमादित्यस्य काले वा गुप्तकाले वा बभूव। तत्र ममाऽपि शोधकार्यं वर्तते। तदानीं तु कालिदासोऽपि अद्यतनः शकुन्तलाऽप्यद्यतनी एव प्रतीयाय।

गुरुकुलमहमत्यजमित्यत्रापि हेतुरासीच्छाकुन्तलमेव। चिरन्तनमिश्रसदृशानां तपःपूतानां गुरुचरणानामहं कोपभाजनं जात इति इत्यत्राऽपि शाकुन्तलमेव कारणम्। अहमाधुनिकशिक्षापद्धतिमनुसृत्य विश्वविद्यालयेऽधीत्य सम्प्रत्युच्चपदभाक् जात इत्यत्रापि शाकुन्तलमेव निमित्तं मन्ये।

शब्दार्थ – मत्पितृपादाः = मेरे पिता जी ने। विश्रब्धम् = निडर होकर। बिभ्यता = डरते हुये। विरुद्धबुद्धिसम्भेदाद् = विरुद्ध बुद्धि के सम्भेद से। तपःपूतानाम् = तपस्या से पवित्र।

अनुवाद – सूत जी ने कहा – नवीन शैली में मैं अपनी या दूसरों की कथा सुनाता हूँ। आप लोग सुनें।

जब मैं शिशु था तभी मेरे पिता ने मुझे देवपुर के गुरुकुल में पढ़ने के लिये भेज दिया था। गुरुकुल के आसपास घना जंगल था। उसी जंगल में मैंने पहले–पहल हरिणों को निडर होकर घूमते देखा। झाड़ियों में से तेज गति से भागते खरगोश भी वहीं देखे। वर्षा के समय वहाँ मोर नाचते दिखाई पड़ जाते थे। वहीं मैंने शकुन्तला से साक्षात्कार किया था।

जीवन और शाकुन्तल ये दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। पर उस किशोरावस्था में मैं जीवन और शाकुन्तल को मिला कर देखता था। परस्पर विपरीत बोध इस तरह मिल गये थे कि उनका घालमेल पता नहीं चलता था, इस तरह जीवन शाकुन्तल बन गया था और शाकुन्तल जीवन।

अब मैं एम.ए. के छात्रों को पढ़ाता हूँ, तो बताता हूँ कि कालिदास विक्रमादित्य के समय में हुए थे, अथवा गुप्तकाल में हुए थे। मेरा भी इस विषय में शोधकार्य है पर उस समय तो लगता था कि कालिदास भी आज के ही हैं , और शकुन्तला भी आज की है।

मैंने गुरुकुल छोड़ा – इसमें कारण था शाकुन्तल। चिरन्तनमिश्र जैसे तपःपूत गुरुचरण की कोपदृष्टि मुझ पर पड़ी – इसमें भी शाकुन्तल ही कारण था। आधुनिक शिक्षा पद्धति से अध्ययन करके मैं विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो सका – इसमें भी शाकुन्तल को ही निमित्त मानता हूँ।

व्याकरण – नवीनयैव = नवीनया + एव – वृद्धि सन्धि। नृत्यन्तोऽदृश्यन्त = नृत्यन्तः +अदृश्यन्त, पूर्वरूप सन्धि। कोपभाजनम् = कोपस्य भाजनम् – तत्पुरुष समास।

इदमुपाख्यानं मदीयैव जीवनगाथा वर्तते उत शकुन्तलाया कथेति न जानामि। शकुन्तलायाः स्मारं स्मारमहं गुरुकुलस्य स्मरामि। गुरुकुलस्मृत्या सहैवोदेति चिरन्तनमिश्राणां शालिग्रामशुक्लानां हरिरामस्य च स्मृतिः।

चिरन्तनमिश्रास्तत्रासन् प्रधाना गुरवः। इदानीं ते क्व सन्ति? हरिरामः सूचयति यत् गता गुरुपादा हरद्वारम्। ते हरिरामस्य श्वसुराः सन्ति। हरिरामस्य श्वश्रूरस्माकं गुरुपत्नी वा तांस्तथा खेदितवती यत् ते त्यक्त्वा गृहं संन्यासमङ्गीकृतवन्तः। गुरुभार्या तु वर्तते। सा तनयेन जनार्दनेन सार्धं निवसति। जनार्दनो जनगणनाविभागे लिपिको वर्तते। महापण्डितानां प्रातःस्मरणीयानां चिरन्तनमिश्राणां तनयः। सा पारम्परिकीं विद्यां सर्वथा विस्मृत्य जनगणनापञ्जिकासु जीवनं क्षपयति। सायङ्काले यदा गृहं परावर्तते, तदा मदिरामदावधूतो भवति। विवाहस्तस्य कारित आसीद् गुरुचरणैश्चिरन्तनमिश्रैरेव। भार्या तस्य स्वश्वश्र्वाः अत्याचारान् पत्युश्च मदिराव्यासङ्गमसहमानाऽऽत्माघातं कृत्वा ममार। अधुनाऽपरं तस्य विवाहं चिन्तयति गुरुपत्नी। परन्तु कर्कशायास्तस्याः प्रकृतिं जनार्दनस्य च मदिरावशवर्तित्वमवबुध्य न कोऽपि सज्जनः स्वकन्यां तस्मै दातुमुत्सहते। एतत् सर्वं मया विज्ञातं हरिराममुखादेव। जनार्दनस्तस्य श्याल एव।

गुरुकुलेऽन्या गुरव आसन् शालिग्रामशुक्लाः। ते त्वैषमो दिवङ्गता इति हरिरामेणैव सूचितम्। दिवि ते सन्ति उताऽन्यस्मिन् लोक इति नाऽहं वक्तुं क्षमः। निधनात् प्राक् ते विक्षिप्ता अभूवन्। अनवरतमाकाशे किमपि ध्यायन्तः सहसाऽपशब्दासारं स्ववदनाद् ववर्षुः।

शब्दार्थ – स्मारं स्मारम् = स्मरण कर कर के। गुरुपत्नी = गुरु की पत्नी। मदिराव्यासङ्गम् = मदिरा पान करने की आदत। कर्कशायाः = कर्कशा की। मदिरावशवर्त्तित्वम् = मदिरा के वशीभूत। निधनात् प्राक् = मृत्यु से पहले। विक्षिप्ताः = पागल। अपशब्दासारम् = अपशब्दों की झड़ी। स्ववदनाद् = अपने मुख से।

अनुवाद – यह उपाख्यान मेरी जीवनगाथा है या शकुन्तलता की – यह मैं नहीं जानता। शकुन्तला को याद करते–करते मैं गुरुकुल को याद करता हूँ। गुरुकुल की स्मृति से बड़े गुरु जी चिरन्तनमिश्र जी की तादें भी जुड़ी हुयी हैं। शालिग्राम शुक्ल जी की और हरिराम की स्मृतियाँ भी गुरुकुल से जुड़ी हुयी हैं।

चिरन्तन मिश्र जी गुरुकुल के प्रधान गुरु थे। अब वे कहाँ होंगे? हरिराम बताता है कि गुरुजी हरद्वार चले गये हैं। वे हरिराम के ससुर हैं। हरिराम की सास – अर्थात् हमारी गुरुमाता (चिरन्तन मिश्र की पत्नी) ने उन्हें इतना तंग किया कि वे अन्त में घर छोड़कर संन्यासी हो गये। गुरुमाता अभी जीवित हैं। वे अपने बेटे जनार्दन के साथ रहती हैं। जनार्दन जनगणनाविभाग में क्लर्क है। इतने महान् पंडित प्रातःस्मरणीय चिरन्तनमिश्र कापुत्र वह अपनी सारी पारम्परिक विद्या को भूल कर जनगणना की फाइलों में जीवन खपा रहा है। शाम को जब घर लौटता है, तो शराब के नशे में धुत रहता है। उसका ब्याह तो गुरुजी ने – चिरन्तन मिश्र जी, ने पहले करा दिया था, पर उसकी पत्नी अपनी सास (हमारी गुरुमाता) के अत्याचारों और पति की शराब की लत को सहन नहीं कर पायी, और आत्महत्या कर के चल बसी। अब गुरुमाता बेटे का दूसरा ब्याह रचाना चाहती हैं। पर उस कर्कशा के स्वभाव और जनार्दन की शराबखोरी की बात जान कर कोई भी सज्जन उस घर में अपनी बेटी नहीं देना चाहता।

ये सब बातें मुझे हरिराम के मुख से ही पता चली थीं। जनार्दन उसका साला जो है।

गुरुकुल में दूसरे गुरुजी थे – शालिग्राम शुक्ल। वे इस साल स्वर्गवासी हो गये – यह भी हरिराम ने ही बताया। वे स्वर्ग में हैं, या और किसी लोक में, यह तो मुझे पता नहीं है। मृत्यु के पहिले वे विक्षिप्त हो गये थे। लगातार आकाश में ताकते रहते और मुह से अचानक गालियों की बौछार करने लगते थे।

हरिरामो गुरुभगिनीं चिरन्तनमिश्राणां दुहितरमनुकम्पामुपयेमे। स स्वग्रामे निवसति। पितृपितृव्यादीनां महती कृषिभूमिस्तस्य हस्तसाद् भूता। ग्रामे तस्य वर्चस्वम्। आरात् प्रसृतं यजमानत्वम्। नेतृभिः सम्पर्कोऽप्यस्ति। सर्वेषां वृत्तमसौ जानाति, बहु भाषते यथापूर्वम्, भूमिविकासबैङ्कस्याऽध्यक्षपदमप्यलङ्करोति।

शब्दार्थ – दुहितरम् = पुत्री को। पितृपितृव्यादीनाम् = बाप दादों की। हस्तसात् = प्राप्त। वर्चस्वम् = प्रभाव। यथापूर्वम् = पहले जैसे।

अनुवाद – हरिराम मे गुरुभगिनी , चिरन्तन मिश्र की पुत्री अनुकम्पा के साथ विवाह किया था। वह अपने गाँव में रह रहा है। बाप दादों की बड़ी कृषिभूमि उसे प्राप्त हुयी है। गाँव में उसका वर्चस्व है। सर्वत्र फैला हुआ यजमानत्व है। नेताओं से उसका सम्पर्क है। वह सभी के बारे में जानता है। वह पहले जैसे अत्यधिक गप्प मारता है तथा भूमिविकास बैंक का अध्यक्ष पद अलंकृत कर रहा है।

व्याकरण – गुरुभगिनी = गुरोः सम्बन्धात् भगिनी। यथापूर्वम् = पूर्वं यथा , अव्ययीभाव समास। दुहितरम् = द्वितीया एकवचन।

ग्रामं ततं निकषैव वर्तते लक्ष्मणपुरम्। अथ एव प्रायशोऽसौ लक्ष्मणपुरमप्यायाति। यदा आयाति, तदा मद्गृहेऽवश्यमतिथीयति। आदिवसमसौ नगरे भ्राम्यति, तैस्तैर्जनैर्मिलति, रात्रौ मद्गृहमागत्य समस्तस्य लक्ष्मणपुरस्य, स्वस्य ग्रामस्य च वार्ताः श्रावयति। श्रावं श्रावमसौ निगदन्नेव निद्राधीनो भवति। गुरुकुले ये छात्रा गुरवश्चासन्, तेषामपि किं किं वृत्तमिति कदाचित् यथास्मृति हरिरामः कथयति।

केवलं शकुन्तलायाश्चर्यां न करोति हरिरामः। शङ्केऽहं यत् स जानाति कुत्रास्ते शकुन्तला। शकुन्तलाविषयकं मम दौर्बल्यमवगच्छन्नेवासौ तद्विषये मौनमवलम्बते।

गुरुकुलं तत्? यस्मिन् गुरुकुलेऽहं च हरिरामश्चान्तेवासिनौ आस्तां, तत्तु सम्प्रति नास्ति। इतोऽस्माभिस्त्यक्तं गुरुकुलमितश्च देशः समजनि स्वतन्त्रः। स्वतन्त्रताप्राप्तिसमनन्तरं गुरुकुलं सकष्टं सावरोध समुच्छ्वसिति स्म। कथञ्चित् प्राणिति स्म। पुरा भूमिधरैस्तस्य कृते ग्रामस्यैकस्यायः प्रत्तमासीत्। तेन प्रधानाचार्याणां चिरन्तनमिश्राणां शालिग्रामशुक्लानां प्रबन्धकानं साधुशरणसिंहानामन्येषां वेतनं तथैव गुरुकुलवासिनां दरिद्रच्छात्राणां च भोजनादिकमदीयत। यदा वित्तराशिर्न्यूनायते, तदा प्राधानाध्यापकाश्चिरन्तमिश्राः स्ववेतनेन दरिद्रच्छात्राणां कृते भोजनादिकं व्यवस्थापयन्ति, तत्कृते च शृण्वन्ति समधिकरतरं भार्यायास्तर्जनमुपालम्भनं च।

शब्दार्थ – ग्रामम् = गाँव के। अतिथीयति = अतिथि के रूप में रहना , आतिथ्य स्वीकार करना। आदिवसम् = सम्पूर्ण दिन। श्रावं श्रावम् = सुन सुन कर। चर्या = सेवा। दौर्बल्यम् = दुर्बलता।

अनुवाद – उसका गाँव लखनऊ के निकट ही है। इसलिये वह प्रायः लखनऊ चला आता है। जब आता है, तो मेरे घर में मेहमानी जरूर करता है। दिन भर में शहर में घूमता रहता है, पता नहीं किस–किस से मिलता है, और रात को मेरे घर आ कर अपने गाँव के और सारे लखनऊ के किस्से वह सुनाता रहता है। केवल शकुन्तला की कोई चर्चा नहीं करता हरिराम। मुझे शंका है कि शकुन्तला का अता–पता मालूम है उसे। पर शकुन्तलता के बारे में मेरी कमजोरी को जान कर ही वह इस विषय में चुप रहता है। गुरुकुल में जो–जो गुरुजन और छात्र थे – वे अब कहाँ हैं? – क्या कर रहे हैं – यह सब हरिराम को पता है और मुझे उनके हाल बताता रहता है।

गुरुकुल – जिसमें हम लोग पढ़े थे – मैं और हरिराम – अब वह नहीं है। इधर हमने गुरुकुल छोड़ा इधर और देश आजाद हुआ। आजादी के बाद भी किसी तरह गुरुकुल अटक–अटक कर साँस लेता रहा। किसी तरह कुछ समय जीवित रहा। जमींदारों ने उसते लिये एक गाँव की आमदनी बाँध रखी थी। उससे किसी तरह प्रधानाचार्य चिरन्तन मिश्र जी, शालिग्राम शुक्ल जी, प्रबन्धक साधुशरण सिंह जी तथा दो–तीन और लोगों के वेतन और गुरुकुल में रहने वाले दरिद्र छात्रों का भोजन हो जाता था। फसल खराब होने पर कई बार गाँव से अनाज पानी कुछ नहीं आता। तब बड़े गुरुजी अपने पास से दरिद्र छात्रों के भोजन पानी की व्यवस्था करते और इस पर गुरुआइन के ताने और उलाहने उन्हें सुनने पड़ते।

अथ भूमिधराणां राज्यं विच्छिन्नम्। गतं ग्रामादागतमायः। शासनेन संस्कृतपाठशालानां स्थितेः परिज्ञानार्थं कापि समितिर्विनिर्मायि। तया समित्या प्रस्तुते प्रतिवेदने देवपुरस्थं गुरुकुलमधिकृत्य मर्मान्तकः प्रहारो विहितः। ततस्तु

शासनादपेक्ष्यमाणस्यार्थिकसाहाय्यस्यापि गुरुकुलस्य कृते सर्वथा भग्नाऽऽशा। येषां भूमिधराणामनुग्रहेण गुरुकुलं प्राणिति स्म, तेषां सन्ततयः वाणिज्ये व्यवसाये च व्यापृता स्वसन्ततीः कान्वेण्टसंज्ञकविद्यालयेषु पाठयितुं कामं दद्युः प्रचुरधनराशीः, परन्तु संस्कृतपाठशालायाः कृत इदानीं पणमपि दाने सङ्कुचन्ति तेषां हस्ताः। अत एव मृतं गुरुकुलम्। तस्यावसानेन सहावसिताः शकुन्तलया सह व्यतीताः क्षणाः।

तथापि स्मृतिस्त्वद्यापि मलीयसी वरीवर्ति। गुरुकुलस्य स्मृतिः क्लिश्नाति मनः। गुरुकुलस्मृत्यावच्छिन्नास्ते शकुन्तलायाः स्मृतिः। शकुन्तलायाः स्मृत्या संसक्तानि सन्ति तान्येव गुरुकुलवासदिनानि। अहं तेभ्यः स्पृहयामि, तेभ्यो जुगुप्से, तेभ्यो जिह्रेमि, तेभ्यो निलीये, तान्यन्वेषयामि, तेभ्यः कुप्यामि तेभ्यः प्रीणामि। अन्तर्निखातास्तिरश्चीना शङ्कव इव न ताः स्मृतयो मनसोऽपयान्ति।

शब्दार्थ – भूमिधराणाम् = जमींदारों की। प्राणिति = जीवित था , चल रहा था।

अनुवाद – जमींदारी खत्म हो गई। गाँव से जो मिलता था, वह बंद हो गया। सरकार से संस्कृत पाठशालाओं की स्थिति के आकलन के लिये एक समिति बनाई उस समिति के प्रतिवेदन में देवपुर के गुरुकुल पर बड़ा मर्मान्तक प्रहार किया गया था। उसके बाद तो सरकार से अनुदान मिलने की जो आशा थी, वह भी धूल में मिल गयी। जिन जमींदारों की कृपा से गुरुकुल चल रहा था, उनकी सन्तानें वाणिज्य–व्यवसाय में लग गई। ये लोग अपने बच्चों को कान्वेंट स्कूलों में पढ़ाने के लिये तो अनाप–शनाप खर्च कर सकते थे, पर संस्कृत पाठशाला चलाने के लिये दान देने में उन्होंने हाथ समेट लिये। इसलिये गुरुकुल मर गया। उसके अवसान के साथ ही शकुन्तला के साथ बिताये क्षणों का भी अवसान हो गया।

पर स्मृति तो अभी भी पीछा नहीं छोड़ती। गुरुकुल की स्मृति मन को कचोटती है। गुरुकुल की स्मृति से जुड़ी हुई है शकुन्तला की स्मृति। शकुन्तला की स्मृति से संसक्त हैं गुरुकुल निवास के वे दी दिन। मैं उनके लिये स्पृहा भी करता हूँ घृणा भी करता हूँ, उनसे कतराता हूँ, मुँह छिपाता हूँ, उन्हें खोजता हूँ, उन से चिढ़ता हूँ और उन पर प्रसन्न होता हूँ। भीतर तिरछे घुपे शंकु की तरह मन से गुरुकुल की स्मृतियाँ जाने का नाम नहीं लेतीं।

प्रधाना गुरवश्चिरन्तनमिश्राः सिद्धान्तकौमुदीं पाठयन्ति स्म। सिद्धान्तकौमुदी त्वाद्यन्तं कण्ठस्था तेषाम्। प्रतिसूत्रं प्रौढमनोरमामपि ते विना पुस्तकमुद्धरन्ति प्रायः। व्याकरणज्ञानस्य महान् पारावारः पुरतो नः समुच्छलति। वयमेव तथा क्षुद्रा यल्लघुषु घटेषु कियत् ततः समाविशेत्।

तस्मिन् दिने कस्यचित् सूत्रस्य प्रौढमनोरमाविहितव्याख्यानमधिकृत्य गुरुचरणानां मनसि संशय उदियाय ते मां समादिष्टवन्तः –''रघुवीरा! '' मम कक्षं गत्वा प्रौढमनोरमाया मातृकामानय। आसन्दिकायां काश्चनमातृकाः सन्ति स्थापिताः। तत्रैव सा स्यात्।

अहं रक्तवस्त्रावरणगुण्ठितां प्रौढमनोरमामातृकामनयामि – ''आनीता?'' गुरव आहुः – श्श्द्वाविंशतितमं पृष्ठमुद्घाटय।... पठ तावत्। किमाहुर्भट्टोजीपादाः–

अहं पठामि। यावद् गुरुभ्राता जनार्दन उपेत्य ब्रूते – मातर आह्वयन्ति।

श्रुत्वैव गुरुपादानां समुज्ज्वलं गौरमुखं निष्प्रभं सत् कालिमानं भजते। मिश्रगुरवो यावन्त ऋजवो गुरुभार्या तावती कुटिला कर्कशा च। ते नितान्तसुकुमारस्वभावाः, सा परं परुषा।

श्मातर इत्युक्तमात्रे जनार्दने उत्थाय विवर्णवदना दीना गुरव आहुः – तर्हि एवं कुरु। मातृकामिमां स्वकक्षं नीत्वा पठ। श्वोऽहं समाधास्ये।

मातृका मायाऽऽनीता स्वकक्षम्। तत्र का व्याख्या तत्सूत्रमधिकृत्य प्रौढमनोरमाकारेण दत्तेति नाहमवगन्तुमपारयम्। हस्तलिखितानि जीर्णपुरातनपत्राणि परावर्तयमाणोऽहं सहसा चमत्कृतः। तस्मिन् पुटके केवलं प्रौढमनोरमाया एव नासीन्मातृका। सहैव ''मनोरमाकुचमर्दिनी'' अप्यासीत, आसीच्च तदनन्तरम् अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

शब्दार्थ – प्रधाना गुरवः = प्रधान गुरु। सिद्धान्तकौमुदीम् = भट्टोजि दीक्षित विरचित व्याकरण शास्त्र का एक ग्रन्थ।

प्रौढमनोरमा = भट्टोजि दीक्षित विरचित व्याकरण शास्त्र का एक ग्रन्थ। पारावारः = समुद्र। आसन्दिका = कुर्सी। रक्तवस्त्रावरणगुण्ठिताम् = लाल वस्त्र में लिपटी या लाल वस्त्र पहने हुये। निष्प्रभम् = कान्तिहीन। मनोरमाकुचमर्दिनी = प्रौढमनोरमा पर पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा लिखित टीका ग्रन्थ।

अनुवाद – बड़े गुरुजी–चिरन्तन मिश्र–सिद्धान्तकौमुदी पढ़ाते थे। सिद्धान्तकौमुदी उन्हें आद्यन्त कंठस्थ थी। प्रत्येक सूत्र पर प्रौढमनोरमा को भी वे बिना पुस्तक के उद्धृत कर देते। व्याकरणविद्या का महान् पारावार हमारे आगे लहराता रहता था। हम भी इतने क्षुद्र थे कि हमारे छोटे–बड़े घड़ों में कितना समाता?

उस दिन किसी सूत्र पर प्रौढमनोरमा की व्याख्या को लेकर गुरुजी के मन में सन्देह हो आया। उन्होंने मुझ से कहा – रघुवीर! हमारे कमरे में जा कर प्रौढमनोरमा की पोथी ले आ। चौकी पर कुछ पोथियाँ रखीं हैं, उन्हीं में वह होगी।

मैं लाल कपड़े में बँधी हुई प्रौढमनोरमा की पोथी ले कर आता हूँ। ले आये? – गुरुजी कहते हैं – बाईसवाँ पन्ना खोलो। पढ़ो! क्या कहते हैं भट्टोजी..... ?

मैं पढ़ने लगता हूँ तभी गुरुभ्राता जनार्दन आकर कहता हैं.....माँ बुला रही हैं।

सुनते ही गुरुजी का उजला गोरा मुख काला पड़ जाता है। बड़े गुरुजी जितने ही सीधे, गुरुआइन उतनी ही टेढ़ी और कर्कश। ये एकदम कोमल सुभाव के और वे बहुत कठोर। जनार्दन का – माँ – भर कहना था कि गुरुजी उठ कर फीके चेहरे के साथ कहते हैं – तो ऐसा करो। इस पोथी को अपने कमरे में ले जा कर पढ़ो। हम कल इस प्रश्न का समाधान करेंगे।श्श

मैं पोथी अपने कमरे में ले आया। उसमें प्रौढमनोरमाकार ने सूत्र पर क्या व्याख्या दी है – यह मैं नहीं समझ सका, पर पुराने हस्तलिखित जीर्ण पत्र पलटाते–पलटाते मैं चौंका। उस बंडल में केवल प्रौढमनोरमा की ही पोथी न थी, उसके साथ मनोरमाकुचमर्दनी भी थी और उसके बाद रखा था – अभिज्ञानशाकुन्तल।

न मे मनो रेमे प्रौढमनोरमायां न वा मनोरमाकुचमर्दन्याम्। अभिज्ञानशाकुन्तलमहं पठितुमारब्धवान्। पठंश्च निरुद्धनिःश्वास इवाहं सञ्जातः। अन्यत् सर्वमिव तिरोदधत् सर्वाङ्गीणमिवालिङ्गदभिज्ञानशाकुन्तलं मयि निखातमिव पिनद्धमिव स्यूतमिव प्रत्युप्तमिव च बभूव।

कियदवधि अहमन्यस्मिन्नेव लोके रममाण आसमिति नाज्ञासिषम्। सायङ्कालः समजनि। गुरवोऽग्निहोत्रं सम्पादयन्ति। प्रथमायाश्छात्रा उच्चौर्वेदपाठं कुर्वन्ति। हरिरामो मामाह्वति –

'रघुवीर'! अये रघुवीर! बहिरायाहि। सन्ध्यावन्दनं न करिष्यसि किम्'?

अहं सुप्त इव सचक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्ण इव बहिरायामि। सन्ध्यां सम्पाद्य मृत्तैलदीपालोके पुनरभिज्ञानशाकुन्तलमवगाहे सकृत् पठित्वा पुनः पाठमारभे। ''ईसीसि चुम्बिआंइं भमरेंहिं – श्प्रस्तावनायां नट्या गीयमानां गीतिं पठामि।'' ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि – इति संस्कृतच्छायां पठामि। मनसि किमपि सञ्जायते। एतद् दृश्यं तु मया कुत्रचिद् दृष्टम्। कुत्र दृष्टमिति न स्मरामि। कुत्र सन्ति ताः प्रमदा या सदयं शिरीषकुसुमान्युच्चिवन्ति। ता अभित एव सन्ति। तथापि न दृश्यन्ते।

शब्दार्थ – अभिज्ञानशाकुन्तलम् = कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध नाटक। निरुद्धनिःश्वास इव = श्वास रोके हुये की तरह। निखातम् = जड़ा गया। प्रत्युप्तमिव = बोये गये की तरह। सचक्षुः = नेत्रों सहित।

अनुवाद – मेरा मन न प्रौढमनोरमा में लगा, न मनोरमाकुचमर्दनी में। अभिज्ञानशाकुन्तल मैं पढ़ने लगा। पढ़ते–पढ़ते साँस थम गयी। सब कुछ गायब होने लगा, बचा रहा शाकुन्तल मुझे सब तरफ से लपेटता हुआ, मेरे भीतर समाता हुआ, सिला जाता हुआ, बोया जाता हुआ।

पता नहीं कितनी देर मैं किसी और दुनिया में खोया रहा। साँझ हो गयी। गुरुजी अग्नीहोत्र कर रहे हैं। प्रथमा कक्षा के छात्र वेदपाठ कर रहे हैं। हरिराम मुझे आवाज दे रहा है – रघुवीर, ए रघुवीर! बाहर आ! सन्ध्यावन्दन नहीं करना क्या?

मैं सोया हुआ–सा, आँख होते हुए भी अन्धे जैसा, कान होते हुए भी बहरे जैसा बाहर आता हूँ। सन्ध्या करके लालटेन की मन्दी रोशनी में फिर अभिज्ञानशाकुन्तल पढ़ने लगता हूँ। एक बार पढ़ कर फिर पढ़ता हूँ। प्रस्तावना में गायी जाने वाली गीति पढ़ता हूँ – ईसिसि चुँबिआँइ भमरेंहि– फिर संस्कृत छाया पढ़ता हूँ – ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि सुकुमार केसर वाले शिरीष के फूलों को भौरें हौले से चूम रहे हैं! मन में कुछ होता है। यह दृश्य मैंने कहीं देखा है। कहाँ देखा है – याद नहीं। वे प्रमदाएँ कहाँ हैं, जो शिरीष के फूल तोड़ती दिखी थीं? वे यहीं कहीं हैं, पर दिख नहीं रहीं।

हरिरामो न केवलमाप्रथमायाः कक्षाया मे सहाध्यायी, अपितु सहकक्षवासी अपि। अध्ययनं नाभिनिविशते तन्मनः। श्श्मम पितुर्यजमानत्वं दूरं प्रसृतम्। किं करिष्यामि सिद्धान्तकौमुदीं मुक्तावलीं वा पठित्वा। विवाहाद्युपनयानादिसंस्कारसम्पादनेन जीविकोपार्जनं मया करणीयम्। सप्तशतीपाठः प्रचुरधनप्रदायको भवति। तत् सर्वमहं जानामि।श। – इति स कथयति। तथापि न्याये व्याकरणे च मे गतिमवगत्य स चाटूक्तिपुरस्सरं कदाचित् कदाचित् मदधीते मुक्तावलीं वा कौमुदीं वा।

न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीं पठितुं मत्पार्श्वमुपविष्टः स निद्राति। मृत्तैलदीपं मत्पार्श्वे मन्दायते। मातृकाया अक्षराणि धूमायन्ते। तथापि न परिजिहीर्षामि मातृकाम। प्रस्तावनायां सूत्रधार वदति – ''तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।'' पुनरपि चेतसि मम किमपि जाजायते। कुतश्चित् कयाचित् गीयमानेन हारिणा गीतेनाऽहमपि ह्रिये। यत् पठामि तत् तु अनुभूतपूर्वं ममेति मतिर्जायते, परन्तु क्वाऽनुभूतमिति न जाने।

''अथ स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु'' इत्यजानन् विक्षिप्ततर्को विपर्यस्तविचारो ध्वस्तमतिर्विस्मृतकार्यो यथाकथञ्चिहं रात्रावसितप्रायायां सुप्तः।

शब्दार्थ– सहाध्यायी = साथ में पढ़ने वाला। सहकक्षवासी = साथ ही कक्ष में रहने वाला। जीविकोपार्जनम् = आजीविका का उपार्जन। प्रचुरधनप्रदायकः = अत्यधिक धन देने वाला। हारिणा = मनोहर। रात्रावववसितप्रायायाम् = रात्रौ + अवसितप्रायायाम् , अयादिसन्धि।

अनुवाद – हरिराम प्रथमा से मेरा सहपाठी ही नहीं है, हम एक साथ एक कमरे में रहते भी आये हैं। पढ़ने में मन नहीं लगता है हरिराम का। वह कहता है – ''पिताजी की जजमानी इतनी फैली हुई है। सिद्धान्तकौमुदी या मुक्तावली पढ़ कर क्या होगा? हमको तो शादी ब्याह और जनेऊ करा–करा कर जीविका चलानी है। सप्तशती का पाठ करो, तो खूब आमदनी होती है। यह सब हम कर ही लेते हैं।'' फिर भी हरिराम न्याय और व्याकरण में मेरी समझ अच्छी है – यह देख कर मेरे पास पढ़ने के लिये आ बैठता है और मस्का मारता हुआ मुझ से मुक्तावली या कौमुदी पढ़ता रहता है।

वह मुक्तावली पढ़ने के लिये मेरे पास बैठा था। पढ़ते–पढ़ते ऊँघने लगा है। बगल में रखी लालटेन की रोशनी मन्दी होती जा रही है। पोथी के अक्षर धुँधला रहे हैं। फिर भी पोथी मेरे हाथ से छूट नहीं रही। प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है – ''तुम्हारे गीत की धुन में मैं बलात् बह गया था –'' फिर मेरे मन में कुछ होने लगता है। कोई गीत जैसे बलपूर्वक मुझे बहाये लिये जा रहा हो। जो कुछ पढ़ रहा हूँ, वह मैंने वहीं अनुभव किया है, पर कहाँ, यह पता नहीं।

मेरा तर्क बिखर गया था, विचार गड़बड़ा गये थे, मति ध्वस्त हो गयी थी, जो करना था वह मैं नहीं समझ पा रहा था। यह सपना है, या माया या मतिभ्रम – यह न जानता हुआ किसी तरफ मैं उस रात सो पाया।

अन्येद्युः कुतो वा कथं वा वर्त इति न जानामि। चिरन्तनमिश्राः पृच्छन्ति–दृष्टा प्रौढ़मनोरमा? अवगतः सूत्रार्थः?

ओमिति शनकैरहमवोचम्। तर्हि मातृकामानय।

अहं प्रकम्पितः। मनो व्यथितम्। प्राणा उत्कायिताः। मातृका यदि गुरुभ्यः परावर्तनीया तर्हि शाकुन्तलमपि परावर्तनीयं भवति। तत् कथं दद्यामिति किं करोमि किं कथयामीत्यजानतोऽपि सहसैव निर्लज्जेव मत्तेव मे जिह्वा प्रससार निस्ससार च वच इदं मन्मुखात् –''भगवन'', अभिज्ञानशाकुन्तलस्य मातृका वर्तते तस्मिन्नेव पुटके। तामहं पठितुमिच्छामि।

गुरवश्चकिता मां निध्यायन्ति। श्तत्र वर्तते सा? – त आहुः – ''मया तु विस्मृतम्। आम्। सा तत्र स्यात्। किन्तु त्वम्? पठिष्यसि? शाकुन्तलम्? पाठ्यक्रमे तु तन्नाऽस्ति।''

शब्दार्थ –अन्येद्युः = दूसरे दिन। निर्लज्जा = लज्जारहित।

अनुवाद – अगले दिन मैं कहाँ हूँ, कैसे हूँ – यह मैं नहीं जान रहा हूँ। बड़े गुरुजी पूछते हैं प्रौढमनोरमा देख ली? सूत्र का अर्थ समझ में आया?

मैंने धीरे से कहा – 'जीश।' तो फिर पोथी लाओ।

मैं काँप उठा। मन मसोस उठा। प्राण निकलने–निकलने को हुए। यदि पोथी गुरुज को दे देता हूँ तो उसके साथ ही शाकुन्तल भी लौटाना होगा। तो पोथी कैसे दे दूँ – क्या करूँ इस उधेड़बुन में अनजाने ही निर्लज्ज मेरी जीभ मतवाली की तरह चली और

मेरे मुँह से यह निकला – गुरुजी, उस बंदी में अभिज्ञानशाकुन्तल की पोथी भी है। मैं उसे पढ़ना चाहता हूँ।

गुरुजी चकित हो कर मुझे ताकते रह गये। श्यवह पोथ भी है उसमे? ''– उन्होंने कहा – श्यहम भूल ही गये थे। हाँ, होगी वह भी उसी बन्दी में। पर तुम? तुम उसे पढ़ोगे? अभिज्ञानशाकुन्तल? वह तो पाठ्यक्रम में नहीं है।''

– तथापि पठितुमिच्छामि। – अपराधीव विमूढ इव दुर्व्यसनीव स्वधृष्टतया स्वात्मनो बिभ्यन्निवाहं कथयामि।

गुरवो मां निर्वर्णयन्ति। तेजस्विनी तेषां दृष्टिः। मदीयं ममं सा भिनत्ति। मोहमुच्छिनत्तीति प्रतीयते। मुखमवनमय्याहं तां परिहरामि।

गुरुचरणानां नयनयोः कापि व्यथोदियाय। श्यमा तु चिन्तितमासीत् यत् त्वं वैयाकरणो भविष्यसि। व्याकरणं नाम मूलं सर्वविद्यानाम्। तव पितापि व्याकरण एव वैदुष्यं ते कामयते। स मे सखा। त्वं चं पतसि साहित्यपङ्के, यत्र किमपि नास्ति। किं भवति साहित्येन–काव्येन? व्यामोह एव। पश्चात्तापमुपेष्यसि किमन्यत्?

गुरुचरणानां सा वाङ् न मे मनसि श्लिष्यते स्म। अचिरप्रवृत्ते ग्रीष्मे मन उत्कायते। आराद् गुरुकुलं सुरभिवनवात् वहन्ति। प्रतिदिवसं द्विस्त्रिर्वाहं नीदतटं यामि, सलिलमवगाहे। मध्याह्नप्रखरेषु तत्रैव क्वचित् तरुच्छायायां निद्रामि दिवसानानं परिणामरमणीयत्वं कल्पयामि।

शब्दार्थ – अपराधीव = अपराधी की तरह।सर्वविद्यानाम् = समस्त विद्याओं का। साहित्यपङ्के = साहित्य के कीचड़ में। वाङ् = वाणी। प्रतिदिवसम् = प्रत्येक दिन।

अनुवाद – ''फिर भी.....पढ़ना चाहता हूँ गुरुजी! '' मैं अपराधी की तरह, विमूढ की तरह, दुर्व्यसनी की तरह अपने आप से डरता हुआ सा कहता हूँ।

गुरुजी मुझे गौर से देखते हैं। बड़ा तेज है उनकी आँखों में, उनकी दृष्टि मुझे बींधती चली गयी है। वह मेरे भीतर का मोहजाल काटती सी लगती है। मैं सिर झुकाये हुए उससे बचता हूँ।

गुरुजी की आँखों में व्यथा का भाव आ गया है। श्यहमने सोचा था कि तुम वैयाकरण बनोगे। व्याकरण ही तो मूल है सब विद्याओं का। तुम्हारे पिताजी भी व्याकरण का ही विद्वान् बनाना चाहते हैं तुमको। वे हमारे मित्र ठहरे। पर तुम तो साहित्य के कीचड़ में गिरना चाहते हो। उसमें तो कुछ भी नहीं है। साहित्य से – काव्य से होता ही क्या है? उसमें तो केवल व्यामोह है। बाद में पछताओगे – और क्या?

गुरुजी की बात मेरे मन में नहीं जमी। ग्रीष्म अभी–अभी आया है। मन बावला–सा हो रहा है। गुरुकुल के आसपास फूलों की सुगन्ध से भरी हवाएँ बह रही हैं। मैं दिन में दो तीन बार नदी के किनारे जाता हूँ, पानी में डुबकी लगाता हूँ, दोपहर में तेजधूप में वहीं किसी पेड़ की छाया में झपकी ले लेता हूँ। ऊँघते हुए दिन के रमणीय अवसान का सपना देखता हूँ।

अध्ययनं मनो नाभिनिविशते। दूरीभवति सिद्धान्तकौमुदी, विस्मर्यते न्यायमुक्तावली। शरीरेण कक्षायां तिष्ठामि, मनसाऽन्यत्र वर्ते।

शुक्लगुरवो मुक्तावलीं पाठयन्ति। किं ते कथयन्ति इति न जानामि। तेषां वैखरी

निरर्थकतां गतेवाधोमुखस्य मसृणघटस्येव मम मानसे न श्लिष्यते। – ब्रूहि व्याप्तिलक्षणपरिष्कारम्। – सहसा ते पृच्छन्ति। अहं प्रश्नमेव नैवाशृण्वम्। पार्श्वस्थो हरिरामो मां नुदति।

रघुवीर! वद तावत्। – गुरवो गर्जन्ति।गुरुजी! – न मया स्मर्यते। हरिराम! त्वं तावद् वद।हरिरामः किमपि वक्ति। तेन गुरवोऽधिकतरं कुप्यन्ति। सतर्जनं त आहुः – ''गच्छतं युवाम्। इन्धनमानयतम्। अयमेव युवयोः कृते दण्डः।

मुक्तावल्या कक्षायां केवलं छात्रद्वयं वर्तते – अहं च हरिरामश्च। उभयोर्निष्कासनेन शुक्लगुरुणामपि विश्रान्तिर्भवति। ते मध्याह्नं सुलभनिद्रं स्वकक्षे वाहयन्ति। अध्यापनं नाभिनिविशते वस्तुतस्तेषामपि मनः। पाठयन्ति ते एवमेव मर्मदारणम् कर्णस्फोटनम्। तेऽनध्याये दत्तरुचयो निग्रहस्थाने दृढधियः संशयविपर्ययग्रस्ताः स्वयं सन्ति।

शब्दार्थ – दूरीभवति = दूर होता है। न्यायमुक्तावली = विश्वनाथ तर्कपंचानन द्वारा विरचित न्यायसिद्धान्तमुक्तावली।

अनुवाद – पढ़ाई में मन लगता नहीं है। सिद्धान्तकौमुदी दूर हो गयी है, मुक्तावली भूली जा रही है। शरीर से कक्षा में रहता हूँ, मन से कहीं और।

शुक्ल गुरु जी मुक्तावली पढ़ाते थे। वे क्या कहते थे कुछ समझ में नहीं आता था। उनकी वैखरी मुझे निरर्थक प्रतीत होती थी और उलटे मुख घड़े में जैसे पानी नहीं टिकता उसी तरह गुरुदेव की वाणी मेरे मन में नहीं चिपकती थी। वे सहसा पूँछते थे – व्याप्तिलक्षण का परिष्कार बताइये ? मुझे उनका प्रश्न ही नहीं सुनायी देता था। मेरे पास में बैठा हुआ हरिराम मुझे प्रेरित करता था –

– रघुवीर बोलो। गुरु जी गर्जना कर रहे हैं।

– गुरु जी ! मुझे कुछ भी याद नहीं है।

– हरिराम तुम बताओ।

हरिराम कुछ बोलता था। इससे गुरु जी और अधिक कुपित हो उठता था। डाटते हुये गुरुदेव ने कहा – तुम दोनो जाओ। लकड़ियाँ लाओ। यही तुम दोनो का दण्ड है। मुक्तावली की कक्षा में दो छात्र थे – मैं और हरिराम।

हम दोनो को निकाल देने से शुकल गुरु जी को भी विश्राम मिलता था। वे नींद लेते हुये दोपहर अपने कक्ष में बिताते थे। वास्तव में अनध्याय में गुरु जी का मन भी रमता था।

उनका अध्यापन कानफोडू और मर्मविदारण करने वाला होता था। उनका मन पढ़ाने में कम ही लगता था।निग्रहस्थान में बुद्धि रमती थी और वे संशय और विपर्यय से ग्रस्त रहते थे।

इन्धनाननयनायावां प्रचलितौ – अहं च हरिरामश्च। मनो मे निष्ठाशून्यं भ्रमति, किमप्यालिखति। दैनन्दिनकृत्येष्वपि कृच्छ्रेण पाणिपादं प्रसरति। हरिरामो मां तथाविधं दृष्ट्वा कुठारेण स्वयं छिनत्ति काष्ठम्, कथयति च – ''अयं कुठारः कर्म, कुठारदारुसंयोगोऽवान्तरव्यापारः, छिदा करणस्य परशोश्छिदैव फलम्। अस्मिंश्छिदाकरणेऽहमुपादानकारणमस्मि, त्वं निमित्तकारणम्। कृत्ताः काष्ठचयाः, इदानीं त्वमिन्द्रियार्थसन्निकर्षेण सञ्चयं कुरु।''

काष्ठसञ्चये कः श्रमः कियान् वा कालोऽपेक्ष्येत? अहं वनभुवि निरुद्देश्यमाहिण्डे। अकस्मात् कर्णशष्कुलीमपूरयन्म्लानस्य जीवकुसुमस्य विसासनं सन्तर्पणं सकलेन्द्रियमोहनकरं किमपि गानम्। तद्रागेण प्रसभं ह्रतोऽहं गीतध्वनिमनुसरामि।

शब्दार्थ – इन्धनानयनाय = लकड़ी लाने के लिये। दैनन्दिनकृत्येषु = प्रतिदिन के कृत्य। पाणिपादम् = हाथ – पैर। कुठारदारुसंयोगः = कुल्हाड़ी और लकड़ी का संयोग। परशोः = फरसा। काष्ठचयाः = काष्ठों के समूह। कर्णशष्कुलीः = कर्णकुहरों को।

अनुवाद – मैं और हरिराम , हम दोनो लकड़ियाँ लाने के लिये चल पड़े। मेरा मन निष्ठाशून्य होकर घूम रहा था, कुछ लिख रहा था। दैनन्दिन कार्यों में भी बड़ी कठिनाई से हाथ दृपैर चलते थे। मेरी इस अवस्था को देखकर हरिराम स्वयं कुल्हाणी से लकड़ी काट रहा था और कह रहा था – कुल्हाड़ी कारण है, कुल्हाड़ी और लकड़ी का संयोग अवान्तरव्यापार है। छेदन के कारण परशु का फल छेदन ही है। इस छेदन क्रिया में मैं उपादान कारण हूँ और तुम निमित्तकारण हो। ये लकड़ियाँ कट गयीं, अब तुम इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष को काष्ठ संचय के रूप मे प्रतिफलित करो।

काष्ठसञ्चये कः श्रमः कियान् वा कालोऽपेक्ष्यते ? अहं वनभुवि निरुद्देश्यमाहिण्डे। अकस्मात् कर्णशष्कुलीमपूरयत् म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनं सन्तर्पणं सकलेन्द्रियमोहनकरं किमपि गानम्। तद्रागेण प्रसभं ह्रतोऽहं गीतध्वनिमनुसरामि।

लकड़ी के संचय में क्या श्रम है ? उसके लिये कितना काल अपेक्षित है ? मैं वनभूमि में बिना किसी उद्देश्य के भटकता हूँ। सहसा मेरे कर्ण के कुहरों को भरता हुआ गीत सुनायी दिया। उसे सुनकर मेरे मुरझाये हुये प्राणकुसुम खिलने लगे , मुझे तृप्ति का अनुभव होने लगा। उस गीतराग से आकर्षित मैं उसका अनुसरण करने लगा।

तत्र तामहं प्रत्यक्षीकृतवान् – सत्यं शकुन्तलामेव। लब्धं नेत्रनिर्वाणम्।

सा एकस्मात् पादपाज्जपाकुसुमान्युच्चिनोति। स्म। अहं समीपं गत्वा पादपान्तर्हितस्तदीयां रूपसुधां सतृणं पिबामि। उत्पक्ष्मराजि बालकुरङ्गचञ्चलमपाङ्गं प्रत्यङ्गं च सन्नद्धं यौवनम्। पुष्पावचाय उत्थापितः कोमलविटपानुकारी बाहुः स्वयमेव मौक्तिकसर इव तरुशाखया ललम्बे।

मानुषीसु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः। इति विस्मयस्तब्ध इव निर्निमेषनयनो निद्धयायंस्तां स्वात्मना स्वात्मानमहमकथयम्। अनन्तरमस्मरम्नेमे शब्दा मदीयाः, अपित तस्यैवाभिज्ञानशाकुन्तलकारस्य। यद्येनामवलोक्य न मे शब्दा अपितु कालिदासीयान्येव पदानि मनुस्युद्गतानि, तर्हि निश्चप्रचमियं कालिदासीयैव शकुन्तला स्यात्।

अनेन विचारेण सहसा विद्युत्सञ्चारमिव शरीरेऽहमन्वभवम्। यावन्नैवेयं मामपवलोक्य तिरोभवति, तावदानं किमप्यालपामीति सङ्कल्प्य तामहमुपासर्पम्।

शब्दार्थ – वनभुवि = वनभुवि = जंगल की भूमि में। कोमलविटपानुकारी = कोमल लताओं का अनुकरण करने वाली। प्रत्यङ्गम् = प्रत्येक अंग में।

मैंने उसे प्रत्यक्ष देखा। वह एक वृक्ष से जपापुष्प चुन रही थी। मै उसके पास गया और एक वृक्ष की आड़ से उसके रूप को देखने लगा। उठी बरौनियों वाले हरिण के शावक के समान उसकी चितवन थी। उसके प्रत्येक अंग में यौवन पिरोया हुआ था। फूल तोड़ने के लिये ऊपर उठाया हुआ हाथ पेड़ की डाल से लटकती हुयी मोती की माला की तरह दिखा।

17.4 सारांश

इस इकाई के माध्यम से लेखक ने इस युग में शिक्षा दृ जगत् में व्याप्त कतिपय उन बुराइयों का उल्लेख किया है। गुरुकुलों के विनाश तथा अंग्रेजों के दिखाये मार्ग पर चल रही भारतीय शिक्षा व्यवस्था को रेखांकित करते हुये कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रतीक के माध्यम से उन तमाम विकृतियों को भी दिखाने का प्रयास किया है, जो आज हमारी संस्कृति को नष्ट कर रहीं हैं। हरिराम नाम का विद्यार्थी अपनी गुरुभगिनी अनुकम्पा से विवाह कर लेता है। शास्त्र अध्ययन के प्रति छात्रों में उत्पन्न हो रही अनभिरुचि की ओर भी लेखक ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

यह इकाई अत्यन्त विशद है, इस कारण समग्र रूप से मूल पुस्तक से पढ़ना चाहिये।

17.5 शब्दावली

मायाविन्युपाख्यानम् = मायाविनी उपाख्यान।

श्रावयित्वा = सुना कर।

नवनलिनदलसम्पुटभिदि = नये कमलों के सम्पुट को खिलाने वाले।

सवितरि = सूर्य।

स्वस्वकुलायान् = अपने दृअपने घोसलों को।

विहङ्गमेषु = पक्षी।

निमिषमात्रमपि = क्षण भर भी।

वनभुवि = जंगल की भूमि में।

कोमलविटपानुकारी = कोमल लताओं का अनुकरण करने वाली।

प्रत्यङ्गम् = प्रत्येक अंग में।

17.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उपाख्यानमालिका, राधावल्लभ त्रिपाठी , प्रतिभा प्रकाशन, नयी दिल्ली ,1999
2. संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास, चतुर्थ खण्ड, राधावल्लभ त्रिपाठी, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, नयी दिल्ली, 2018
3. राधावल्लभ की समीक्षा – परम्परा, सम्पादक – रमाकान्त पाण्डेय, ईस्टर्न बुक लिन्कर्स, नयी दिल्ली, 2018
4. राधावल्लभ की सारस्वत– साधना, सम्पादक दृ रमाकान्त पाण्डेय, ईस्टर्न बुक लिन्कर्स, नयी दिल्ली, 2013

17.7 बोध प्रश्न

1. अभिज्ञानशाकुन्तल की कथा अपने शब्दों में लिखिये।
2. अभिज्ञानशाकुन्तल उपाख्यान में प्रतिविम्बित युगबोध का निरूपण कीजिये।

3. कवि राधावल्लभ त्रिपाठी की वर्णन कला का निरूपण कीजिये।
4. आज की शिक्षाव्यवस्था के सन्दर्भ में कवि के विचारों का विश्लेषण कीजिये
5. आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में उपाख्यानमालिका का महत्त्व निरूपित कीजिये

17.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. राधावल्लभ की समीक्षा – परम्परा, सम्पादक – रमाकान्त पाण्डेय, ईस्टर्न बुक लिन्कर्स, नयी दिल्ली, 2018
2. राधावल्लभ की सारस्वत– साधना, सम्पादक – रमाकान्त पाण्डेय, ईस्टर्न बुक लिन्कर्स, नयी दिल्ली, 2013।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 18 उपाख्यानमालिका मदनदहनम्—चतुर्थ उपाख्यान

इकाई की रूपरेखा

18.1 उद्देश्य

18.2 प्रस्तावना

18.3 शिव और उमा का वार्तालाप

18.4 शिव का चित्तविकार

18.5 उमा के विषय में शिव का चिन्तन

18.6 उमा का कार्यालय में त्यागपत्र

18.7 शिव और नगेन्द्र के पिता का वार्तालाप

18.8 उमा का उत्तरजीवन

18.9 सारांश

18.10 शब्दावली

18.11 सन्दर्भग्रन्थ

18.12 अभ्यासप्रश्न

18.13 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

18.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

- मदनदहन उपाख्यान में वर्णित तथ्यों को जान सकेंगे।
- कवि ने कालिदास के कुमारसम्भव महाकाव्य को आज के परिप्रेक्ष्य में किस तरह संयोजित किया है, यह भी जान सकेंगे।
- आधुनिक संस्कृत गद्यसाहित्य की प्रवृत्तियों का परिज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- उमा के विषय में आप अध्ययन करेंगे
- शिव के विषय में आप अध्ययन करेंगे

18.2 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने अभिज्ञानशाकुन्तल उपाख्यान का अध्ययन किया। मदनदहन उपाख्यान में भी कवि ने महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव महाकाव्य को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संयोजित किया है। इसमें कुमारसम्भव में प्रतिपादित शिव और उमा के आदर्श जीवन का प्रभाव है। कवि ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में शिव और उमा के चरित्र को परिभाषित किया है। उपाख्यान के आरम्भ में शिव अपने कार्यालय में उपस्थित रहते हैं। उनके सामने फाइलों का समूह पड़ा था। उनके बीच किसी फाइल को देख कर वे समाधिस्थ हो गये थे। उमा आई और शिव के सामने अपना टाइप किया हुआ मेटर

उनके पास रख दिया। शिव ने फाइल खोलते ही देखा कि सब कुछ शुद्ध टाइप है किन्तु एक पेज पर रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता टाइप थी। यह देख कर शिव उमा पर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने उमा को डाटते हुये पूछा – यह क्या है ? उमा भयभीत होकर बोली कि यह कविता उसने अपनी बहन रागिनी के लिये टाइप की है। शिव और भी भड़क उठे। उमा का घर का काम कार्यालय में करना शिव को नहीं भाया। दुःखी होकर उमा ने कार्यालय से अवकाश ले लिया। यह जानकर शिव को खेद हुआ। उमा का पता लगाने के लिये शिव उसके घर जा पहुचे। उसके पिता नगेन्द्र शर्मा से बातचीत हुयी। रागिनी को वहाँ देखकर वे पूर्व स्मृतियों में खो गये। जब शिव की पत्नी सती जीवित थी तब रागिनी उनके घर आती जाती थी किन्तु उसकी मृत्यु के बाद वह उनके घर नहीं आयी। अन्ततः शिव की मुलाकात उमा से होती है। शिव ने उसे कार्यालय आकर अपना शेष वेतन लेने तथा वह कविता लेने के लिये कहा। समय पाकर शिव ने उमा के प्रति अपना प्रणय व्यक्त किया। किन्तु उमा ने उसके प्रणय को मना कर दिया और शिव वापस चला गया।

18.3 शिव और उमा का वार्तालाप

शिवः कार्यालयेऽवस्थितः। सम्मुखमासीत् पञ्जिकानां राशिः। स कस्याञ्चित् पञ्जिकायां दत्तदृष्टिः समाधिस्थ इव बभौ। ऋज्वायतस्तदीयः स्थिरः पूर्वकार्यो निवातनिष्कम्पदीपक इव प्रतीयाय।

उमा प्रतिदिनमिव समेयाय। मनसैव सा शिवसपर्यामाततान। वसन्तावताररमणीयः कालः। कार्यालयाद् बहिः सहसा पुंस्कोकिलो मधुरं चुकूज। तरुणार्करागं वासो वसाना तन्वङ्गी अपि तस्याः वाससः प्रभापटलेन बहिः परिस्फुरन्तीव स्तनाभ्यां मनागावर्जितेव सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव सा कार्यालयस्वामिनः शिवस्य कक्षं प्रविष्टा –'.सर, ह्यो दत्तं सर्वं टङ्कणकर्म साधितं मया –' इति निगदन्ती सस्मितं निध्यायन्ती च शिवं पूजासामग्रीमिव पञ्जिकां तत्समक्षं स्थापयामास। शिवे पञ्जिकामुद्घाट्य अधीयाने प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षितैः सेङ्गितं तं निर्वर्णयाञ्चकार।

शब्दार्थ – दत्तदृष्टिः = आँख गड़ा कर। निवातनिष्कम्पदीपकः = निवात में रखा निष्कम्प दीपक। कार्यालयस्वामिनः = कार्यालय के अधिकारी। निगदन्ती = कहती हुयी। निध्यायन्ती = ध्यान करती हुयी।

अनुवाद – शिव अपने दफ्तर में बैठे हुए थे। सामने फाइलों का गट्ठर था। किसी फाइल को देखते हुए वे समाधि में डूब से गये थे। सीधी काया.....एकदम स्थिर निवात में रखे दिये सी स्थिर।

उमा हर रोज की तरह आई। शिव के कक्ष में घुसते ही उसने मन ही मन शिव की पूजा की।

वसंत का रमणीय समय था। दफ्तर के बाहर आम की डाल पर बैठा कोकिल सहसा दो–तीन बार कूजा। उमा ने तरुण सूर्य के समान लाल साड़ी पहन रखी थी। वह आज प्रसन्न थी। देह कुछ झुकी–झुकी पड़ रही थी। चलती–फिरती पल्लवों से भरी लता की तरह धीरे–धीरे आ कर शिव के कक्ष में वह घुसी और उनके सामने खड़ी हो गई।

सर, कल जो टाइप करने को मेटर दिया था, वह पूरा कर दिया है – मुस्कान के साथ यह कहते हुए उमा ने पूजा सामग्री की तरह फाइल शिव के सामने सरका दी।

शिव ने फाइल खोली। उमा तेज झोंके में हिलते नीलकमल की आंखों से उन्हें ताकती हुई खड़ी थी।

सर्वं साधु टङ्कितमासीद् यथा शिवेन स्ववचनैर्लेखापितं तथैव शुद्धं परिमार्जितमपि। प्रतिपत्रं चक्षुस्त्वरया सारयन् शिवः तत् तत् पत्रं स्वहस्ताक्षरैः समग्रयामास। अन्तिमे पत्रेऽर्पितं तेन स्वहस्ताक्षरम्। उमाया हृदयं सहसाऽतिमात्रमधडधडायत। अन्तिमपत्रस्याधस्तात् कर्गदमेकमासीद् यत्र रवीन्द्रनाथस्य काव्यपङ्क्तयष्टङ्किताः –

इफ दाउ स्पीकेष्ट नाट, आय विल फिल

माय हार्ट विथ दाइ साइलेंस एंड इंड्योर इट.....

आय विल कीप स्टिल एण्ड वेट लाइक दि नाइट

विथ स्टारी विझिल, एण्ड इट्स हैड बेंट लो

विथ पेशेंस.....

पाठं पाठं चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः परिवृत्तधैर्य इव शिवो बिम्बफलाधरोष्ठ उमानने नयनयुगलं व्यापारयामास। अस्मिन्नेव क्षणे पुरावर्तिनि पञ्जिकाप्रपञ्चे विलीनो मदनोऽधिज्यं शरमारोप्य तत्सन्धानाय तत्परस्तस्थौ। वातायनात् सहकारमञ्जरीणां सौरभं समादाय सहसाऽन्तः कक्षं ससार समीरः। उमाया प्राणा अधिकण्ठं प्राप्ताः – किमेते कथयिष्यन्तीदानीमिति।

– किमेतत्? दरवक्रितभ्रूरपृच्छच्छिवः।

– सर, एतत् तत्, तदेतत्.....

शब्दार्थ – स्ववचनैर्लेखापितम् =अपने वचनों से लिखाये गये (डिक्टेट किये गये)। अम्बुराशिः = समुद्र। विम्बफलाधरोष्ठे = विम्बफल के समान अधरोष्ठ।मदनः =कामदेव। अधिकण्ठम् = कण्ठ तक। सहकारमञ्जरीणाम् = आम्रमञ्जरियों का।

अनुवाद – सब कुछ अच्छी तरह टाइप किया हुआ था, जैसा–जैसा शिव ने कल डिक्टेट कराया था। शिव एक–एक पत्र पर सरसरी नजर डालते हुए हस्ताक्षर करते गये। वे आखिरी पत्र पर हस्ताक्षर कर ही रहे थे कि उमा का हृदय तेजी से धड़क उठा। शिव ने आखिरी पत्र पलटा, तो उसके नीचे एक कागज और था, जिस पर टाइप किया हुआ था –

इफ दाउ स्पीकेस्च नाट, आय

विल फिल

माइ हार्ट विथ दाइ सायलेंस एंड एंड्योर इट,

वाय विल कीप स्टिल एंड वेट लाइक दि नाइ

विथ स्टारी विजिल एंड इट्स हैड वेंट लो

विथ पेशेंस.....

इसे पढ़ कर शिव चकराये। रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि की एक पूरी कविता टाइप की हुई थी। चंद्रमा के उगने पर समुद्र में जैसे हलचल होती है, उस तरह शिव का चित्त कुछ उलट–पुलट सा हो गया। चकित हो कर उन्होंने पके विम्बफल जैसे लाल अधर वाले उमा के मुख को देखा।

इसी क्षण सामने आलमारी में फाइलों की कतार के पीछे छिप कर बैठा कामदेव अपने धनुष की डोरी पर बाण चढ़ा कर उसे छोड़ने–छोड़ने को हुआ। वसंत की वायु उसके साथ षड्यंत्र में शामिल था। खिड़की से आम की बौरों की सुवास लिये वह कक्ष में आ घुसा। उमा का जी कंठ तक आ गया। पता नहीं अब ये क्या कहेंगे?

शिव ने सहसा कठोर स्वर में पूछा – यह क्या है?

–सर, ये कुछ नहीं सर – उमा काँप उठी।

18.4 शिव का चित्तविकार

शिवः सहसा चेतोविकारमन्वभवत्। कुत इयं रिङ्गति विकृतिरिह चित्ते मदीये – इति विमृशन्नसौ पुरोवर्तिनं पञ्जिकाराशिमवैक्षत। तत्रैव निगूढं स्यात् विकारकारणम् सहसा महसा तस्य नेत्रयोः स्फुलिङ्गा उदिताः। मानसे निगूढं तृतीयं नेत्रमुन्मीलितम्। ततो निःसृता वह्निज्वाला तत्क्षणं यावत् अन्तरिक्षेऽन्तर्हिता देवाः क्रोधं संहर–संहरेति गिरं निगदन्ति तावत् पञ्जिकाराशेः पृष्ठे निलीनं मदनं न्यगिलन्। उमा चकम्पे। शिवश्चिन्तयामास–किमनया टङ्कितम्। इयं रवीन्द्रनाथस्य काव्यम्। अस्माकं कमलसिन्थेटिक्सकार्यालये किमनेन? किमर्थं चेयं मयि पृच्छति ग्लान्या ग्लपितेव, सङ्कुचितेव प्रभञ्झनकम्पिता वल्लरीव तिष्ठतीति।

तस्यास्तूष्णीम्भावः सन्धुक्षयामास शिवस्य कोपालम्। – उच्यताम् !

– पुनरसौ उमां प्रणुनोद।
– सर, मम भगिनी रागिणी वर्तते खलु.....
– स्यान्नाम रागिणी वा या कापि वा। किं तया?
– .....सा विद्यालये पाठयति। सा रवीन्द्रनाथस्य कवितामेकां वाञ्छति स्म। तस्याः कृते मया टङ्कितेयं कविता।
– तस्याः कृते ननु। भगिन्याः कृते टङ्कणं करोति भवती कार्यालये स्थित्वा। कार्यालयमागत्य कार्यालयस्यैव कर्म सम्पादयितव्यम्, न गृहकर्म।

एवं सर! – इति वाष्पवृत्तिकलुषेण कषायकण्ठेन कथमप्यकथयदुमा, झटिति च कक्षान्निस्ससार।

अरूपहार्यं शिवस्य मनः। शब्दा न तत् स्पृशन्ति। अर्थास्ततो निवर्तन्ते। तत् तु केवलं पञ्जिका एव जानाति, अवबुध्यते च। ननु किमेतन्मयाऽकारि? कथमधुना श्वः स्वमुखं दर्शयितुं प्रभविष्यामि तस्मा इति विचिकित्साविकलहृदया उमा शिरोवेदना मां बाधत इति कार्यालयाधीक्षकाय श्रीनन्दिने निवेद्य अर्धदिवसावकाशप्रार्थनापत्रं तस्मै समर्प्य स्वगृहमाययौ।

शब्दार्थ – विकृतिः = विकार। निलीनम् = छिपा हुआ। वह्निज्वाला = अग्निज्वाला। वाष्पवृत्तिकलुषेण = आँसुओं के प्रवाह से कलुषित। निस्ससार = निकल जाना।

अनुवाद – इसके साथ ही शिव को अपने भीतर विचित्र विकार रेंगता हुआ सा लगा। यह विकार अब मन में कहाँ से प्रविष्ट हुआ – उन्होंने सोचा और सामने रखी आलमारी में फाइलों की कतार पर एकटक आँखें गड़ा दीं। उसी कतार के पीछे कामदेव दुबक कर बैठा था। सहसा शिव की आंखों से लपट की ज्वाला फूटी।

कमल सिंथेटिक्स के एक कक्ष में चलते इस दृश्य को आकाश से देखते हुए देवता जब तक पुकारते कि रोको–रोको अपने क्रोध को, फाइलों की उस कतार के पीछे छिपा बैठा कामदेव जल कर राख हो चुका था।

शिव सोच रहे थे, – रवीन्द्रनाथ की कविता – इसने टाइप की और इस फाइल में रख दी, इसका क्या मतलब?

क्या मतलब है इसका? – उन्होंने और भी कठिन स्वर में उमा से पूछा –

उमा सिर झुकाये खड़ी थी। आँधी में काँपती लता की तरह वह, ग्लानि से धरती में गड़ी जा रही थी।

– कहिये! शिव ने फिर कहा।

– कुछ नहीं सर! मेरी छोटी बहन है न रागिणी –

होगी.....उससे क्या?

उसे रवीन्द्रनाथ की एक कविता चाहिये थी कालेज में पोएट्री कंपटीशन में सुनाने के लिये। मैंने उसके लिये यह कविता टाइप की थी। गलती से इस फाइल में रखी रह गई।

'बहिन के लिये टाइप की थी यह! दफ्तर में बैठ कर आप बहिन के लिये टाइपिंग करती हैं। दफ्तर में बैठ कर दफ्तर का ही काम किया कीजिये न कि घर का।' – शिव ने झिड़कते हुए काह – श्ले जाइये इसे।'

–जी सर! – उमा ने भर्राये कंठ से कहा और फाइल उठा कर तेजी से कक्ष से निकल गई।

शिव का मन अरूपहार्य है। शब्द उसे छूते नहीं। कविता भी नहीं। उसके काम से प्रसन्न होकर वे कभी–कभी प्रशंसा भरी दृष्टि से उसे देख लेते थे। दफ्तर के दूसरों लोगों के आगे इसका उदाहरण देते थे – उमा जी की तरह मेहनत से काम करना सीखिये आप लोग। इस सबका उसने कुछ और अर्थ क्यों समझा? अब उनके आगे क्या मुँह लेकर जा सकूँगी? – यह सोचती हुई उमा ने कार्यालय अधीक्षक नंदीजी को छुट्टी की अर्जी दी और कार्यालय से घर चली आई।

18.5 उमा के विषय में शिव का चिन्तन

शिवस्तु – अकारणमेव मया भर्त्सिता उमा, एका कविता यदि तया स्वभगिन्या कृते कार्यालयस्य टङ्कणयन्त्रेण टङ्किता तर्हि नैतेनाऽभ्रं छिन्नम्। अस्मिन् कार्यालये नियुक्तिभाज इतरे जनाः कार्यालयसमये चत्वरबलीवर्दा इव इतस्ततः सञ्चरन्ति, द्वित्रा इतरा महिलास्तु आदिवसं वार्तालापेन स्वेतरवयनेन वा कालं क्षपयन्ति, उमैवेका स्वकार्यं सर्वथा गाम्भीर्येण तत्परतया योग्यतया च सम्पादयति इति उमायाः दायित्वबोधं सर्वथा मनसि श्लाघमानोऽसौ शकिं करोमि, कथमस्या मनोमालिन्यं मद्विषयकमपनयामीति–विचारयन् चतुष्पादिकामुपरि उमयोज्झितां पञ्जिकां ददर्श। पञ्जिकामुद्घाटयामास।

इफ दाउ स्पीकेष्ट नाट.....

टङ्कितेष्वेतेषु अक्षरेषु किं वर्तते? काव्यं खल्वेतत् उमया स्वभगिन्याः कृते टङ्कितम्,

एतत् तस्या वस्तु, तस्यै देयम्, मदीयभर्त्स्नया भीषिता सा एतद् अत्रैवोज्झित्य गता–इति मनसि कृत्वा घण्टिकां वादयामास शिवः। समागतो भृत्यः।

उमादेवी तावदाकार्यताम्। – शिव आदिदेश।

शब्दार्थ – अकारणमेव = बिना किसी कारण। नियुक्तिभाजः = नियुक्त हुये। चत्वरबलीवर्द इव = चौराहे की साँड़ की तरह। आदिवसम् = सम्पूर्ण दिन। स्वभगिन्याः कृते = अपनी बहन के लिये। चतुष्पादिका = कुर्सी।

अनुवाद –उसके जाने के बाद शिव सोचने लगे – नाहक ही मैंने उमा को यों डपट दिया। उसने अपनी बहिन के लिये दफ्तर में बैठकर एक कविता टाइप कर ही ली थी तो इसमें ऐसा कौन सा अपराध था? इस दफ्तर में काम करने वाले दूसरे कर्मचारी दफ्तर के समय चौराहे के साँड़ों की तरह बाहर घूमते फिरते हैं, और भी दो महिलाएं हैं दफ्तर में, वे दिन भर गपशप करती हुई या स्वेटर बुनती हुई समय काटती हैं। इन सब लोगों में ले दे कर उमा ही है, जो अपना काम गम्भीरता और तत्परता से करती है। मेरे इस तरह डपट देने से जरूर उसे ठेस लगी होगी। आज मिली इन चिट्ठियों के जवाब उसे लिखवाना है। – यह सोच कर उन्होंने घंटी बजाई। चपरासी आया, तो उससे कहा – उमाजी को बुला लाओ।

18.6 उमा का कार्यालय में त्यागपत्र

उमादेवी तु अधीकक्षमहोदयात् अर्धदिवसस्यावकाशं गृहीत्वा गृहं गता। शिरोवेदना तामबाधत। भृत्येन सूचितम्।

– भवतु, श्वो दास्यामि कर्गदमेतत् तस्यै इति सङ्कल्प्य शिवस्तत् कर्गदं पञ्जिकातो निस्सार्य चतुष्पाद्यं स्थापितवान्।

सश्वः नागतः। ततः परमुमा कमलसिन्थेटिक्सकार्यालयभवनं न कदाप्यायाता। अन्येद्युरेवासौ त्यागपत्रं स्वीयं प्रेषितवती।

वैयक्तिकारणैरहं सेवां त्यजामि, त्यागपत्रप्रस्तुत्यर्थम् एकमासपूर्वं मया सूचनीयमासीत्, परन्तु गताब्दे मह्यं देय एकमासावधिः क्षतिपूर्त्यवकाशोऽवशिष्टं, तमवकाशं प्रदाय पूर्वसूचनेयं ग्राह्येति तत्र लिखितमासीत्।

पत्रमिदं प्राप्य शिवश्चकितः। किमिदमुमया कृतम्? स वैकल्यमन्वभवत्। मया ह्यस्तेन दिने उमा भर्त्सिता। अपि तस्मादुद्वेजिता सा त्यागपत्रं प्राहिणोत्? किं करोमि? क जानीयां किं कारणमिति चिन्ताचर्चितचेतसस्तस्य गतानि त्रीणि दिनानि। कार्यालये कार्यबाहुल्यम् कुतोऽवकाशः किमपि विचारयितुम्। तथापि मनसि किमपि कीलितम्।

'' क्षतिपूर्त्यवकाशस्तु स्वीक्रियते, तथापि त्यागपत्रपरावर्तनाय उमादेव्यै अवसरो देय '' इति त्यागपत्रमुपरि स्वटिप्पणमङ्कयित्वाऽसौ कार्यालयाधीक्षकाय तत् सारयामास।

शब्दार्थ– अर्धदिवसस्य = आधे दिन का। शिरोवेदना = शिरदर्द। अन्येद्युः = दूसरे दिन। वैयक्तिककारणैः = व्यक्तिगत कारणों से। कार्यबाहुल्यम् = कार्य की अधिकता।

अनुवाद –चपरासी के जाने पर टेबुल पर सामने पड़े पत्रों को तरतीबवार लगाने लगे, तभी उमा का वह कागज हाथ में आ गया, जिस पर टाइप किया हुआ था –

इफ दाउ स्पीकेस्ट नाट, आय बिल फिल

माइ हार्ट विथ दाइ सायलेंस एंड हंड्योर इट.....

अरे, उमा अपना यह कागज यहीं छोड़ गई। ठीक है, उसके आने पर कागज उसे दे कर कह दूँगा – श्लीजिये यह अपनी बहिन को दे दीजियेश तभी चपरासी ने आ कर बताया – उमा देवी, नंदी साहब को आधे दिन की छुट्टी की दरखास्त दे कर चली गई है। उनकी तबीयत खराब हो गई थी।

ठीक है, कल उमा के आने पर उसका कागज उसे दे दूँगा। – शिव ने सोचा।

पर वह कल फिर नहीं आया। अगले दिन उमा ने नौकरी से इस्तीफा भेज दिया। लिखा – व्यक्तिगत कारणों से मैं नौकरी छोड़ रही हूँ। त्यागपत्र देने के लिये एक महीने का नोटिस देना चाहिये, मेरा पिछले साल का एक महिने का क्षतिपूर्ति अवकाश बाकी है, उसे स्वीकृत करके एक महीने का नोटिस उसमें समायोजित कर लेने का कष्ट करें।

शिव चकित रह गये। उमा ने यह क्या किया? वे मन में विचित्र विकलता का अनुभव करने लगे। कल उमा को डपट दिया था, क्या इसी पर उसने इस्तीफा दे दिया? त्यागपत्र पर लिख दिया था – ''क्षतिपूर्ति अवकाश स्वीकृत किया जाय, फिर भी कर्मचारी की योग्यता और अभी तक के उसके रिकार्ड को देखते हुए त्यागपत्र वापस लेने का अवसर भी दिया जाय।''

– इधर इस आशय का पत्र कार्यालय अधीक्षक की ओर से उमा के घर के पते पर चला भी गया।

त्यागपत्रपरावर्तनस्य कापि वार्ता नाऽभूत्। शिवश्चिन्तयति स्म.....कस्य स्खलनं जातम्, केनाऽत्र प्रमादितम्। अपि उमामसौ सम्यङ् बुद्धवान्? कक्षान्निस्सरन्ती सा वलितकन्धरेण वदनेन कथं तमवलोकयामास! सहसा किमप्यस्फुरत् शिवस्य चेतसि? तथा कदाचित् पुराऽप्यसौ अवलोकितः। हिमप्रस्थनगरस्थं भवनं विहाय यदाऽसौ याति स्म, तदा पार्श्वस्थभवनस्याऽर्धोन्मुक्तकपाटात् ग्लान्या ग्लपितं विषादविहतं यन्नयनं तं निरीक्षणे स्म, तद् रागिण्या आसीदिति तदानीमसावमन्यत। किन्तु इदानीमवगतं – सा दृष्टिरुमाया एव आसीद्, न रागिण्याः।

उमा, उमेति शिवस्य हृत्तन्त्र्य इदानीं झङ्कुर्वन्ति।

अथैकदाऽसौ स्वयमेव हिमप्रस्थनगरं गत्वा उमायाः पितरौ ददर्श।

– उमादेव्या केन कारणेन सेवा त्यक्ता, अपि सा अस्वस्थेति प्रष्टुमागतोऽस्मि। इत्यूचे।

शब्दार्थ – त्यागपत्रपरावर्तनस्य =त्यागपत्र लौटाने के लिये। स्खलनम् – गलती। निस्सरन्ती = निकलती हुयी। पुरा =पहले भी। विषाद से विहत। पार्श्वस्थभवनस्य = समीप के भवन के। हृत्तन्त्र्यः = हृदय की तन्त्रियाँ।

अनुवाद – त्यागपत्र लौटाने की कोई बात नहीं हुई। शिव विचार कर रहे थे ———————— इसमें किसकी गलती है, किसने प्रमाद किया है। शिव को लगने लगा कि क्या अभी तक वे उमा को समझ नहीं पाये थे? कक्ष से निकलती हुयी पार्वती ने कन्धाअ घुमा कर उसे कैसे देखा था। सहसा शिव के भीतर कुछ कौंधा। इस तरह वे पहले भी देखे गये हैं। हिमप्रस्थनगर वाला मकान खाली कर के जाते समय पड़ोस के मकान के अधखुले किवाड़ से उन्हें झाँक कर ग्लानि और विषाद के साथ जिसने

ताका था, वे समझते थे कि वह रागिणी है, उमा की छोटी बहिन। नहीं, अब समझ में आ गया, वह रागिणी नहीं थी। दोनों बहनों का चेहरा काफी कुछ मिलता–जुलता है, पर वे आँखें, और वह दृष्टि उमा की ही हो सकती थी।

रागिनी की जबान बहुत ज्यादा चलती है। उमा बोलती कम है, उसकी आँखों से जो झलक जाता है, उसे उस तरह कहा भी नहीं जा सकता।

शिव जो भीतर उमा–उमा की झंकार उठती रही। आखिरकार एक दिन वे हिमप्रस्थनगर उमा के माता–पिता से मिलने जा ही पहुँचे। श्उमा जी मेरे दफ्तर में काम करती थीं, मैं पहले आपके पड़ोस में ही रहता था। उन्होंने नौकरी किस वजह से छोड़ दी, क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है – यह जानने के लिये चला आया

बातें बनाना शिव को आता नहीं। उमा के पिता नगेन्द्र शर्मा से यही कह पाये।

18.7 शिव और नगेन्द्र के पिता का वार्तालाप

उमायाः पिता नगेन्द्रशर्मा प्राह – साधु कृतं यद् भवन्तः समागताः। उमायास्तु प्रकृतिरेव विचित्रा। किमर्थमनया श्रीमतां कार्यालये सेवा स्वीकृता, किमर्थं च सहसा हस्तगताऽपि सेवा त्यक्ता–इति तु अहं स्वयमेव नाऽवगच्छामि। कदाचिदियं जानीयात् कारणम्श – इत्युक्त्वा स्वधर्मदारान् मैनादेवीमिङ्गितवान्।

– प्रकृतिस्था न वर्तते मे वत्सा, किमन्यत्? इति निर्निमेषं निर्वर्णयन्ती शिवं जगाद् मैनादेवी।

  कारणं तु ज्ञायेत! किमर्थं न सा प्रकृतिस्था!

  मनाक् क्षुब्ध इवाऽवादीन्नगेन्द्रः।

– श्रीमतां कृते चायपेयमानयामि, काफीं वा? – मध्य एव छित्वा तदालापं मैनादेवी शिवं पप्रच्छ।

– अलमलमुपचारेण! चायं गृहीत्वैवाऽहं प्रस्थितः। साधयामीदानीम्।

– शिवः प्रतिष्ठमाण इव सञ्जातः।

– अरे, अरे! इत्थं कथं भविता! भवानुमायाः कार्यालयस्वामी। यदा भवानिह हिमप्रस्थनगरे अस्मत्पार्श्वे निवसति स्म, तदा तु यदा कदा इह आयाति स्म। इदानीं तु सर्वथा श्रीमतां दर्शनं दुर्लभं जातम् – इति साग्रहं निरुध्य शिवं मैना रसवतीं गता।

– उमा कुत्रचित् गता वर्तते। – नगेन्द्र कथयन्नासीत्।

– वेतनं किमपि देयं वर्तते उमादेव्याः। तदपि न गृहीतं तया।

– कथं सा एवमन्यमनस्का जाता!

  तदानीमेवोमायाः कनीयसी भगिनी रागिणी चायादिकं गृहीत्वा समेयाय। शिवं सा मनाग् रुष्टेव कटाक्षेणाऽवालोकयत्।

– इयमुमाया अनुजा। – नगेन्द्रः पर्यचाययत्।

– जानामि। शनैरवादीच्छिवः।

– उमाऽपि परिणेतव्या, इयमपि.....

शब्दार्थ– स्वधर्मदारान् = अपनी धर्मपत्नी को। निर्निमेषम् = बिना पलक झपकाये।

कार्यालयस्वामी = अधिकारी। निर्वर्णयन्ती = देखती हुयी। निरुध्य = रोक कर। कनीयसी = छोटी।

अनुवाद – उमा के पिता नगेंद्र शर्मा बोले – ''बहुत अच्छा किया आपने, जो आ गये। उमा का तो स्वभाव ही कुछ अजीब है। पहले तो नौकरी करना ही नहीं चाहती थी। कैसे तो यह आपके दफ्तर में नौकरी करने को यह तैयार हो गई, फिर काहे को इस्तीफा दे कर घर बैठ गई – हमारे तो कुछ समझ में नहीं आया। ये उसकी माँ है – ये कुछ जानती हा'' – पास में, इस बीच पास में आकर बैठ गई मैना देव को बात कर वे कहने गले।

– जी ठिकाने नहीं रहता उमा का और क्या? – मैनादेवी ने कहा, फिर शिव को गहरी दृष्टि से ताका।

– कोई वजह तो हो, क्यों ठिकाने नहीं रहता उसका जी? – नगेंद्र जी ने कुछ चिढ़ कर कहा – बड़ी लड़की है। विवाह की बात कई जगह चली, एक से एक अच्छे लड़के मिल रहे थे, सब के लिये मना करती गई –

– आपके लिये चाय लाऊँ या काफी? बीच में ही पति की बात काट कर मैना ने शिव से पूछा।

– अरे नहीं। कुछ कष्ट मत कीजिये। बस चलूँगा अब। कह कर शिव उठने को हुए।

– अरे, अरे! कष्ट की क्या बात। आप उमा के ऑफिसर रहे हैं, और हमारे पड़ोसी। इतने दिनों बाद आप आये – ऐसे कैसे चले जायेंगे कहती हुई मैनादेवी रसोई की ओर चली गई।

– उमा शायद कहीं गई हुई है – नगेंद्र जी कहने लगे – रागिणी तो घर में है, हमारी छोटी बेटी।

– जी – शिव ने कहा।

थोड़ी देर में चाय की ट्रे उठाये हुए रागिनी आई। चाय का कप पकड़ाते हुए उसने शिव को तिरछी नजरों के साथ ताका।

– यह उमा से छोटी है। – नगेंद्र शर्मा कह रहे थे।

– नमस्ते जी – शिव ने इतना ही कहा।

रागिनी की कथा –

शिवः अश्रुत्वैव स्मृतिलोके लीनः। रागान्धां रागिणीं कथमसौ न जानीयात्? अस्यामेव हिमप्रस्थनगरकालवन्यामसौ तदानीं न्यवसत्। विधुरजीवनम् वनमिव शून्यम्, परितः प्रेतवनमिव जागर्ति जगत्।

सती यदा आसीत्, तदा रागिणी यदा कदा शिवस्य गृहमागच्छति स्म। सती सहसैव दिवङ्गता। उपरतायां तस्यां सर्वे सम्बन्धा अपि विच्छिन्नाः। वैराग्यं शिवस्य हृदि पदमकरोत्।

एकदा तु घनच्छन्ने व्योम्नि म्लायति वासरे रविवासरे अपराह्णकाले रागिणी तस्यावासं समेयाय।

''नारीजीवन'' पत्रिका आयाति भवतां गृहे.....पुरा अहं दीदीभ्यो गृहीत्वा नयामि। इदानीं ता न सन्ति। पश्यतु यदि नवाङ्कः स्यात्.....

''दीदीशति पदं सहसा शिवस्य ह्रन्मर्मव्रणं स्फोटयामास। पुराभूतः शोको नवीभवन् व्यथां ततान। स तूष्णीं श्नारीजीवन'' पत्रिकाया यं कमप्यङ्कमुत्थाप्य तस्यै समर्पयत्, गृहीत्वा सा यास्यतीत्यपेक्षया तस्थौ। किन्तु रागिणी नानाविधं जल्पन्ती तत्रैवास।

– यदा प्रभृति दीदीः दिवं गता, भवान् सर्वथा एकाकी सञ्जातः। नैव रमते भवतां मनो नूनम्। तर्हि अपरो विवाहः किं न क्रियते? कोऽभावो भवतां कृते चिरण्टीनाम्? – इति निगदन्ती सा स्ववदनं शिवस्य दक्षिणांशे न्यदधात्।

शब्दार्थ – वनमिव शून्यम् = जंगल के समान सूना। उपरतायाम् = मृत्यु हो जाने पर। प्रेतवनमिव = श्मशान के जंगल की तरह। ह्रन्मर्मव्रणम् = हृदय के घाव को। पुराभूतः = पुराना हुआ।

अनुवाद – शिव रागिनी के नमस्कार को सुने बिना ही स्मृतिलोक में खो गये। रागान्ध रागिनी को वे जानते हैं, फिर भी कहना नहीं चाहा कि वे उसे जानते हैं। इसी हिमप्रस्थनगरी कालवनी में वे उस समय रह रहे थे। वन के समान शून्य विधुरजीवन , चारो ओर प्रेतवन की तरह फैला संसार। पत्नी सती जब थी, तब वह अक्सर घर आती रहती थी उमा जितनी ही शांत और स्वल्पभाषिणी, रागिणी उतनी ही बातूनी।

सती के रहने के कुछ महीने बाद एक दिन वह उनके घर आई थी। वे अकेले इसी मकान के आगे वाले मकान में रहते थे। सूने वन की तरह विधुर जीवन श्मशान की तरह संसार। रविवार का दिन दोपहर का समय। वे भोजन कर के लेटे ही थे कि कालबेल बजी। दरवाजे पर रागिणी थी। वे देखकर चौंके।

– बस यों ही आई थी। सोचा आज तो इतवार है, आप घर पर ही होंगे। वह कहने लगी।

वे कुछ नहीं बोले थे। रागिणी टी टेबुल पर पड़े अखबार समेटने लगी थी। – जब सती दीदी थीं, तो सब चीजें करीने से रखी रहती थीं। – उसने कहा था।

सती का नाम उसके मुँह पर आना शिव को अच्छा नहीं लग रहा था।

– सती दीदी के न रहने से आप बहुत अकेले हो गये हैं। अब आप दूसरी शादी कर लीजिये। आपके लिये लड़कियों की क्या कमी?

शिवश्चमत्कृतः। क्षणांशेनात्मानं व्यवस्थाप्याऽसौ झटिति दूरीकृत्य स्वदेहं तन्वङ्ग्यास्तस्यास्तनोस्ताम्यन्निवाऽऽह– ''मया बहिर्गन्तव्यम्। गच्छतु भवती।'' – अरे, एतावता शीघ्रम! – सस्मेरं सविस्मयं रागिणी उवाच – पुनः कदा समागमः स्यात्?कुञ्जिकां तालकं च विष्टरादादाय द्वाराद् बहिरागत्य शिवेन कथितमासीत् – ''समागमो न कदापि भविता।''

द्वि–त्रि–दिवसानन्तरं नारीजीवनपत्रिकाङ्कपरावर्तनाय समागतया रागिण्या शिवगृहं शिवेन शून्यीकृतमवलोकितं स्यात्। शिवस्त्वन्येद्युरेव गुहमुज्झित्य हिमप्रस्थनगराद् ग्रेटरकैलासकालवनीं समागतः।

शब्दार्थ – दूरीकृत्य = दूर करके। बहिर्गन्तव्यम् = बाहर जाना है। समागमः = मिलन। द्वि–त्रि–दिवसानन्तरम् = दो–तीन दिन बाद। शून्यीकृतम् = रिक्त।

अनुवाद – यह सुन कर शिव चमत्कृत हो उठे। क्षण भर में अपने को सम्हाल कर अपने शरीर को उस कृशगात्री उनसे एक दम सट गई थी। शिव अपने को दूर करते हुये से बोले – मुझे बाहर जाना है। आप भी जायें। यह सुनकर रागिनी बोली अरे इतनी जल्दी ? मुस्कुराती हुयी विस्मित रागिनी ने कहा – फिर कब मिलन होगा ?

ताला चाभी उठाकर द्वार से बाहर आकर शिव ने कहा था – समागम कभी नहीं होगा। दो तीन दिनों के बाद नारीजीवन पत्रिका का अंक लौटाने के बहाने आई रागिनी ने देखा शिव का घर खाली पड़ा हुआ है। शिव ने दूसरे ही दिन घर छोड़ कर ग्रेटर कैलास नामक कालवनी चले गये थे।

(इस बीच अनेक घटनायें घटीं। उमा ने एक विद्यालय में नौकरी कर लिया)

18.8 उमा का उत्तरजीवन

– फेब्रुअरीमास आगतः। पाठ्यक्रमोऽवसितप्रायः। विद्यालयस्योद्याने कन्दुकपुष्पाणि क्वचिद्धिरण्मयानि क्वचिद् रक्तपीतकपिशानि विकसन्ति। शिक्षिका सामान्यकक्ष आसीना आलपन्ति, विहसन्ति विलसन्ति च। उमैव एकाकिनी उद्याने शिलापट्टमेकमध्यासीना किमपि ध्यायति, निध्यायति, धारयति चात्मानम्।

एकदा तु एवमेवोद्याने स्थितायां तस्यां भृत्या भानुमती आगत्य प्राह – प्राचार्या आकारयन्ति भवतीमिति।

– उमादेवि, विद्यालयस्य वार्षिकोत्सव आयोजनीयः। तत्र सांस्कृतिककार्यक्रमस्य व्यवस्था भवत्या विधेया। – प्राचार्या कथयति स्म।

शब्दार्थ – अवसितप्रायः = समाप्तप्राय। कन्दुकपुष्पाणि = गेंदें के फूल। एकाकिनी = अकेली।

अनुवाद – फरवरी महीना आगया। पाठ्यक्रम प्रायः समाप्त हो रहा था। विद्यालय के बगीचे में गेंदे के फूल खिले थे – कहीं सुनहरे , कहीं लाल, पीले और कपिश। शिक्षिकायें सामान्य कक्ष में बैठ कर वार्तालाप करतीं और हसती। उमा बगीचे में अकेली एक शिलापट्ट पर बैठ कर कुछ सोच रही थी और अपने को सम्हाल रही थी। एकबार वह इसी प्रकार उद्यान में बैठी थी तभी सेविका ने आकर कहा – प्राचार्या आपको बुला रही हैं। विद्यालय का वार्षिकोत्सव आयोजित करना है। साँस्कृतिक कार्यक्रम की व्यवस्था आपको देखनी है – प्राचर्या ऐसा कह रहीं थीं।

मया?

– आम्, भवत्यैव। एवं विस्फारितलोचनाभ्यां मां किमर्थमवलोकयति भवती? गतवर्षं यावत् पुराणिकमहोदया सांस्कृतिककार्यक्रमं संयोजयति स्म विद्यालय एतस्मिन्। तस्याः स्थाने भवत्या नियुक्तिर्जाता। अपि स्मर्यते–मया साक्षात्कार एव भवती पृष्टा–सांस्कृतिककार्यक्रमः कारयितुं शक्ष्यति भवती वा न वेति। भवत्या उत्तरं दत्तमासीत्–अवश्यं शक्ष्यामिति।

उमा अवाक् स्थिता।

शब्दार्थ – विस्फारितनेत्राभ्याम् = आँखे फाड़ कर।

अनुवाद – मुझे ? हाँ, आपको ही। आप मुझे इस प्रकार आँख फाड़ कर क्यों देख रहीं

हैं। पिछले वर्ष तक इस विद्यालय में पुराणिक जी साँस्कृतिक कार्यक्रम का संयोजन करते थे। उनके स्थान पर आपकी नियुक्ति हुई है। जहाँ तक मुझे याद है – आपसे साक्षात्कार के समय ही पूछा गया था – साँस्कृतिक कार्यक्रम करा सकती आप ? आपने उत्तर दिया था – अवश्य करा सकती हूँ। यह सुन कर उमा चुप बैठी रही।

कीदृशः सांस्कृतिककार्यक्रमः छात्रीभिर्योजनीयः? सा सर्वथा स्वात्मानमसहायामन्वभूत्। अस्मिन् विद्यालये शिक्षिकाभ्यः सा पृथक्भूता। तासां वचोभिः स्ववाचं न मिश्रयति, न तदाननसम्मुखीना तिष्ठति। प्रायः परिहरति ताः। ता अपि सर्वा एनामहङ्कारग्रस्तामुच्चताग्रन्थिकुण्ठितां वा कलयन्ति। एवं स्थिते कापि सांस्कृतिकार्यक्रमसमायोजने तस्या साहाय्यं करिष्यतीति न सम्भाव्यते।

शब्दार्थ – छात्राभिः = छात्राओं के द्वारा। स्वात्मानम् = अपने आपको। तदाननसम्मुखीना = उनके सम्मुख।

प्राचार्या से उमा ने पूछा – हमारे विद्यालय की छात्राओं को किस प्रकार का साँस्कृतिक कार्यक्रम करना है। वह इस विद्यालय में अपने को सर्वथा असहाय पा रही थी। इस विद्यालय की शिक्षिकाओं से वह अलग थी। वह कभी उनसे बात नहीं करती थी , वह उनके सम्मुख भी नहीं बैठती थी। प्रायः उनसे दूर ही रहती थी। वे सभी अध्यापिकायें भी इसे अहंकारग्रस्त मानती थीं। ऐसे में साँस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन में कोई उसकी सहायता करेगा , यह सम्भव नहीं लग रहा था।

चिन्ताग्रस्ता उमा गृहं परावृत्ता। जनन्या मैनादेव्या दृष्टं–दुहिता सर्वथा शुष्कमुखी सन्नगात्री म्लाननयना च। साऽनुयुयोज–अपि क्लान्ताऽसि? विद्यालये किमपि वचनीयं जातम्।

– न किमपि। – अति संक्षिप्तमवादीदुमा।

– किमपि अशनीयमानयामि चायपेयं वा?

पुनरपि न किमपीत्युक्त्वोमा स्वकक्षं प्रविवेश। मैना तत्कक्षदिशं शून्यनयनाभ्यां निर्वर्णयन्ती स्थिता। केन कस्माद्वा खेदितं खिन्नं वा उमाया मन इति सा ज्ञातुं न शक्नोति, उमाया दुःखं सम्भाव्य सहस्रगुणी–कृत्य च तत् स्वयं ताम्यति।

शब्दार्थ – परावृत्ता = लौटी। शुष्कमुखी = सूखे मुख वाली।

अनुवाद – चिन्ताग्रस्त उमा घर लौटी। मैना देवी ने देखा कि पुत्री उमा का मुख सूख गया है, शरीर सुन्न है तथा नेत्र म्लान हैं। उसने पूछा – क्या थक गयी हो ? विद्यालय में किसी से बातचीत हो गयी है क्या ?

कुछ नहीं ? उमा अति संक्षेप में बोली।

कुछ खाने के लिये लाऊँ या चाय लाऊँ ?

फिर से दृ कुछ नहीं कहकर उमा अपने कक्ष में प्रविष्ट हो गयी। मैना शून्य नेत्रों से उसके कक्ष की ओर देखती रही। किस कारण या किस के द्वारा उमा का मन खिन्न किया गया है ,यह मैना नहीं जान पायी। उमा को दुःखी देखकर वह उससे अधिक दुःखी होने लगी।

उमा शाटिकां परिवर्त्य पर्यङ्के शिश्ये। मैना देवी पुनरपि प्रष्टुमागता – अपि अस्वस्थाऽसि! किं जातम्?

– किमपि न जातम् मातः। अलं चिन्तया।

पर्यङ्ककोणे निषण्णा मैना देवी तस्या ललाटं परामृशत् शनैः समवाहयच्च। उमया नेत्रं निमीलितम।

अथ तां सुप्तां मत्वा मैनादेवी निःशब्दं कक्षाद् विनिर्गता।

उमा अचिन्तयत्–समस्या मदीया। क्लिश्नाति मातरम्। किं परेषां क्लेशायैव जीवाम्यहम्? कमल– सन्थैटिक्सकार्यालये शिवो यन्न वाञ्छति तन्मया कृतम्। पश्चात् शिवे गृहमागते अहं न मिलिता.....

शिवः, शिवः, शिवः – इति मुहुर्मुहुर्मनसि जुगुञ्ज। शिवस्तस्याः काम्यः। परं स न लब्धः। स अरूपहार्यः। रूपं त्विदं वन्ध्यम्।

शब्दार्थ दृ प्रष्टुम् = पूछने। पर्यङ्ककोणे = पलग के कोने में।

अनुवाद – उमा साड़ी बदल कर पलंग में सो गयी। उमा पुनः पूछने आयी। तुम अस्वस्थ हो ? क्या हुआ ?

– कुछ नहीं माँ। आप चिन्ता मत कीजिये।

– पलग के कोने में बैठी मैना उसके माथे को सहलाने लगी। उमा ने आँख बन्द कर लिया। उसे सोयी जानकर मैना उसके कमरे से बाहर निकल गयी।

– उमा ने सोचा दृ समस्या मेरी है किन्तु माता को कष्ट देती है। क्या मैं दूसरों को दुःख देने के लिये ही जी रही हूँ ? कमल सिन्थेटिक्स कार्यालय में शिव जो नहीं चाहता था , वह मैने किया। फिर जब शिव घर आय तो मैं उससे नहीं मिली।

– उसके मन में बार बार शिव शिव गूँज रहा था। वह शिव को चाहती थी।पर वह उसे प्राप्त नहीं हुआ। उसे रूप से नहीं जीता जा सकता। यह रूप तो वन्ध्य है।

18.9 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि मदनदहन उपाख्यान में कवि ने महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव महाकाव्य को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संयोजित किया है। इसमें कुमारसम्भव में प्रतिपादित शिव और उमा के आदर्श जीवन का प्रभाव है। कवि ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में शिव और उमा के चरित्र को परिभाषित किया है। उपाख्यान के आरम्भ में शिव अपने कार्यालय में उपस्थित रहते हैं। उनके सामने फाइलों का समूह पड़ा था। उनके बीच किसी फाइल को देख कर वे समाधिस्थ हो गये थे। उमा आई और शिव के सामने अपना टाइप किया हुआ मेटर उनके पास रख दिया। शिव ने फाइल खोलते ही देखा कि सब कुछ शुद्ध टाइप है किन्तु एक पेज पर रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता टाइप थी। यह देख कर शिव उमा पर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने उमा को डाटते हुये पूछा दृ यह क्या है ? उमा भयभीत होकर बोली कि यह कविता उसने अपनी बहन रागिनी के लिये टाइप की है। शिव और भी भड़क उठे। उमा का घर का काम कार्यालय में करना शिव को नहीं भाया। दुःखी होकर उमा ने कार्यालय से अवकाश ले लिया। यह जानकर शिव को खेद हुआ। उमा का पता लगाने के लिये शिव उसके घर जा पहुचे।

उसके पिता नगेन्द्र शर्मा से बातचीत हुयी। रागिनी को वहाँ देखकर वे पूर्व स्मृतियों में खो गये। जब शिव की पत्नी सती जीवित थी तब रागिनी उनके घर आती जाती थी किन्तु उसकी मृत्यु के बाद वह उनके घर नहीं आयी। उमा के पिता नगेंद्र शर्मा बोले – श्बहुत अच्छा किया आपने, जो आ गये। उमा का तो स्वभाव ही कुछ अजीब है। पहले तो नौकरी करना ही नहीं चाहती थी। कैसे तो यह आपके दफ्तर में नौकरी करने को यह तैयार हो गई, फिर काहे को इस्तीफा दे कर घर बैठ गई – हमारे तो कुछ समझ में नहीं आया। ये उसकी माँ है– शायद ये कुछ जानती होश।मैना ने पूछा–

आपके लिये चाय लाऊँ या काफी? बीच में ही पति की बात काट कर मैना ने शिव से पूछा।

– अरे नहीं। कुछ कष्ट मत कीजिये। बस चलूँगा अब। कह कर शिव उठने को हुए।

– अरे, अरे! कष्ट की क्या बात। आप उमा के ऑफिसर रहे हैं, और हमारे पड़ोसी। इतने दिनों बाद आप आये – ऐसे कैसे चले जायेंगे कहती हुई मैनादेवी रसोई की ओर चली गई।

– उमा शायद कहीं गई हुई है – नगेंद्र जी कहने लगे – रागिणी तो घर में है, हमारी छोटी बेटी।

– जी – शिव ने कहा।

थोड़ी देर में चाय की ट्रे उठाये हुए रागिनी आई। चाय का कप पकड़ाते हुए उसने शिव को तिरछी नजरों के साथ ताका।

– यह उमा से छोटी है। – नगेंद्र शर्मा कह रहे थे।

– नमस्ते जी – शिव ने इतना ही कहा।अन्ततः शिव की मुलाकात उमा से होती है। शिव ने उसे कार्यालय आकर अपना शेष वेतन लेने तथा वह कविता लेने के लिये कहा। मैना देवी द्वार तक छोड़ने आई। कहने लगी – आया कीजिये कभी–कभी। आप तो एकदम से पड़ौस छोड़ कर चले गये हमारा, फिर खबर भी नहीं ली।श

– जी – शिव ने फिर इतना ही कहा।

– उमा किसी स्कूल में नौकरी का इंटरव्यू देने गई है। सनकी लड़की है। आपकी तो तारीफ करती है। दफ्तर में भी किसी से कोई शिकायत नहीं। फिर भी नौकरी छोड़ कर बैठ गई। नौकरी अब इतनी आसानी से मिलती है क्या?

वसंत बीत गया। गर्मी में चिलचिलाती धूप में दो–तीन महीने भटकते रहने के बाद उमा को आखिरकार एक स्कूल में नौकरी मिल ही गई।

स्कूल की प्रिंसिपल बहुत सख्त और अनुशासन प्रिय हैं। शिक्षिकाओं के बहुत सजधज कर आने से वे चिढ़ती हैं, और समय पर न पहुँचने पर तो उनकी बुरी खबर लेती हैं। डपटती ऐसे हैं कि शिक्षिकाओं का पसीना छूट जाता है। पर उमा से कुछ कहा–सुनी हो, ऐसा अवसर आया ही नहीं। इस विद्यालय में नौकरी मिलते ही उमा जैसे बदल ही गयी। साज श्रृंगार में कोई रुची नहीं रह गई। जब तक कमल सिंथेटिक्स के दफ्तर में थी, रोज नई साड़ी पहनती थी। आइने के सामने घंटों बैठी रहती। अपने ही रूप पर मुग्ध हो जाती। अब जैसे कपड़ों का, बनाव सिंगार को कोई होश ही नहीं। पूरा ध्यान पढ़ाने में रहता। खाली घंटे में विद्यालय के पुस्तकालय में जा बैठती। पढ़ाने के

लिये अच्छी तैयारी करने का जतन करती, यहाँ तक कि उसके लिये किताबें पब्लिक लाइब्रेरी से जा कर लाती।

समय पाकर शिव ने उमा के प्रति अपना प्रणय व्यक्त किया। किन्तु उमा ने उसके प्रणय को मना कर दिया और शिव वापस चला गया। यह इस उपाख्यान का अंशमात्र है। शेष अंश मूल पुस्तक से पढ़ना चाहिये।

18.10 शब्दावली

दत्तदृष्टिः = आँख गड़ा कर।

निवातनिष्कम्पदीपकः = निवात में रखा निष्कम्प दीपक।

कार्यालयस्वामिनः = कार्यालय के अधिकारी।

निगदन्ती = कहती हुयी।

निध्यायन्ती = ध्यान करती हुयी।

स्वधर्मदारान् = अपनी धर्मपत्नी को।

निर्निमेषम् = बिना पलक झपकाये।

कार्यालयस्वामी = अधिकारी।

निर्वर्णयन्ती = देखती हुयी।

निरुध्य = रोक कर।

कनीयसी = छोटी।

18.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उपाख्यानमालिका, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन , दिल्ली , 1999
2. संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास, चतुर्थ खण्ड , राधावल्लभ त्रिपाठी, न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली, 2018
3. राधावल्लभ की समीक्षा– परम्परा , रमाकान्त पाण्डेय, ईस्टर्न बुक लिन्कर्स , दिल्ली, 2013
4. संस्कृत के अभिनव रचनाधर्मी – राधावल्लभ त्रिपाठी, कुसुम भूरिया , सत्यं पब्लिकेशन्स , दिल्ली,2014
5. राधावल्लभ की सारस्वतसाधना, रमाकान्त पाण्डेय, ईस्टर्न बुक लिंकर्स , दिल्ली, 2013

18.12 बोध प्रश्न

1. मदनदहन उपाख्यान का सार अपने शब्दों में लिखिये।
2. राधावल्लभ त्रिपाठी का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
3. मदनदहन उपाख्यान में प्रतिविम्बित युगबोध को प्रस्तुत करिये।

4. शिव का चरित्रचित्रण कीजिये।
5. उमा का चरित्र चित्रण कीजिये।

18.13 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. उपाख्यानमालिका, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन , दिल्ली , 1999
2. संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास, चतुर्थ खण्ड , राधावल्लभ त्रिपाठी, न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली, 2018

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY